

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

(द्वादश भाग)



प्रवक्ता :

श्री १०५ क्षुलक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज



लोककी चेतन अचेतन पदार्थी और वहिंगत्मावोंसे व्याप्तता — इस लोकमें दो जातिके पदार्थ हैं — कुछ चेतन जातिके पदार्थ हैं और कुछ अचेतन जातिके हैं । जहां ज्ञानदर्शन है, जानने देखनेकी शक्ति है, ऐसा पदार्थ भी लोकमें है और जिसमें जानने देखनेकी शक्ति कभी न हुई है, न है न होगी, ऐसे अचेतन पदार्थ भी लोकमें हैं । हम आरा सभी लोग चेतन पदार्थकी जातिके हैं या अचेतन ? हम सब चेतन पदार्थकी जातिके हैं । चेतन पदार्थ तीन प्रकारके पाए जाते हैं — कोई है बहिरात्मा, कोई है अन्तरात्मा और कोई है परमात्मा । जिन जीवोंके शरीरमें आपामाननेकी बुद्धि है वे तो बहिरात्मा हैं । अपने आत्माके बाहरकी चीजें हैं उनको आत्मा मानना उसका नाम है बहिरात्मापत । शरीर आत्माके बाहरकी चीज है । शरीरका सत्त्व अलग है और आत्माका सत्त्व अलग है । इन्द्रिय तथा मनका व्यापार बन्द करके अन्तरङ्गमें अपने आपके स्वका दर्शन किया जात तो स्वयं मालूम पड़ेगा कि मैं चैन्यात्मक पदार्थ शरीरसे न्यारा कोई स्वतन्त्र हूँ । उस निज स्वतन्त्र आत्माको यह मैं हूँ ऐसा समझता है उसे बहिरात्मा कहते हैं । और जो अपने इस ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्वमें ही प्रतीति रखता है कि यह मैं हूँ उसे अन्तरात्मा कहते हैं । अब देख लीजिए कि इस लोकमें बहिंगत्माओंकी संख्या अधिक है या अन्तरात्माओंकी ? बहिरात्मा अधिक पाये जाते हैं । अज्ञानी मिथ्यादृष्टियोंसे भरा यह लोक है ।

अन्तरात्मत्व और अपनी परखका कर्तव्य — इन बहिरात्माओंमेंसे जो कोई भी आत्मा कुछ कर्मोंका क्षलोपगम प्राप्त करके जब कुछ अपनी निर्मलतामें आता है और गुरुजनोंके उपदेशको पाकर जब अपने परिणामोंको सम्हालता है तो उसमें कुछ योग्यता बढ़ती है, वह अन्तरात्मामा बननेकी तरफ बढ़ने लगता है और जब परिणाम बहुत योग्य हो जाते हैं तो सम्यक्त्वका प्रकाश होता है ! यों यह आत्मा बहिरात्मसे अन्तरात्मा बन जाता है । इस प्रतङ्गमें जरा कुछ अनी भी परंक्षा करलें कि हम

इनमेंसे किस लेनके हैं। हम अपने शरीरको ही सब कुछ समझ रहे हैं या शरीरसे आरा। मैं स्वतन्त्र कोई चैतन्यमात्र नहूँ ऐसी कभी सुधि भी रखते हैं। यह तो अपनी निजकी बात है। यदि सोचनेपर यह निर्णय हो कि हमारी बाह्यमें अधिक दृष्टि रहती है, शरीरके सजानेमें, पोजीशन बनानेमें, अहंकार रखनेमें, शरीरके ही पोषणमें यदि अधिक समय गुजरता है तब तो यह खेदकी बात है, और इस बात पर कुछ खेद मानना चाहिए। ये सब तो बिडभनाके कार्य हैं। बहुतसे लोग इस शरीरको ही बार-बार सजाया करते हैं बार बार आईना देखते हैं, यहाँ तक कि घरोंमें जगह जगह आईना गढ़वा देते हैं और शरीरके सजानेकी सामग्रियां रख देते हैं ताकि बार-बार अपना चेहरा देख सकें और खूब शृङ्खाल कर सकें। शरीरको लोग बहुत-बात बार तेल फुलेल, साबुन आदिक लगाकर माफ करते हैं। तो इस तरहकी सारी प्रक्रियां तो बेसुधीमें, अज्ञानतामें हो रही हैं। जो लोग आत्मज्ञानके सचियां हैं उनके पास इन प्रक्रियाओंके करनेका अवकाश ही कहाँ है। इन प्रक्रियाओंमें तो ये अज्ञानी जन ही अग्ना उपर्योग लगाते हैं। तो इस बहिरात्माके ही कारण ये जीव ६४ लाख योनियों में जन्म लेकर भटक रहे हैं। अब तो अपने इस मूढतापूर्ण रवंयेको बदलना चाहिए। आज मनुष्य भवमें हम आप हैं ऐसा पवित्र अवसर मिलना बड़ा दुर्लभ है। अब तो बाहिरी इन सारी बातोंसे हटकर निज ज्ञानके प्रकाशयें आना चाहिए।

अन्तरात्माओंका परम पदमें प्रथम विकास—जो जीव अपने इन तर्क वितर्क विचारिकके बलसे इस निज अन्तरस्वत्वकी ओर आते हैं उन्हें अन्तरात्मा कहते हैं। ये अन्तरात्मा गृहस्थ और मृति दोनों हो सकते हैं। जब तक केवलज्ञान नहीं होता ऐसी ऊची श्रेणीमें छढ़े हुए मृति भी अन्तरात्मा कहलाते हैं। जबसे सम्यक्त्वका प्रकाश होता है तबसे अन्तरात्मा कहलाता है। और जब इस जीवको अपनी साधनाके बलसे पूर्ण विशुद्ध निर्मल निरावरण ज्ञान प्रकट होता है तो उसे परमात्मा कहते हैं स्याद्वाददर्शनमें (उपासित) मूल मंत्र है एमोकार मंत्र। उसमें ५ विकासोंको नमस्कार किया है न कि किसी व्यक्तिको। देखिये ! कितना निष्ठत्र मन्त्र है जिसमें कि किसी तीर्थञ्चुर अथवा मुनिको नाम नहीं लिया गया किन्तु आत्माके ५ विकासोंकी बात कही गयी है। वे विकास ५ बताए गए हैं पर मूलतः ३ हैं वे विकास। साधु अरहंत और सिद्ध। साधु, आचार्य और उगाचार्य ये तीन रूप साधुके बताए गए हैं। सो वह एक साधुरूप ही विकास है और उन्हें ३ माने तब ये अरहंत सिद्ध मिलकर ५ कहे गए हैं। उन्हें अभेद करके यहाँ ३ विकासरूपमें देखिए। जब यह अन्तरात्मा ज्ञानी विरक्त गृहस्थ ज्ञानभावनाकी प्रचुर साधना कर लेता है तब यह उन्हें उत्सुक हो जाता है कि परिग्रहको सम्भालनेका उसे श्रव भाव नहीं रहता। किस परिग्रहको सम्भालूँ ? यदि इस धन वैभव तथा परिजनोंकी सम्भालके ही विकल्पोंमें बना रहूंगा तो यह वर्त्तमानमें तो मिलनता है ही लेकिन भविष्यकालमें भी हमें जन्म मरणका संस्कार दिलाने वाली यह मृत्ता होगी। उससे विरक्त हो जाता है यह ज्ञानी, और

उसे इतनी विरक्ति हो जाती है कि तन पर वस्त्रको सम्भाहलनेकी सुधि नहीं रहती है। उसे भी वह विडम्बना समझता है। जब यह संकल्पपूर्वक समस्त परिग्रहोंका त्याग करता है वह इसीका नाम है साधु। यही है अन्तरात्म परमेष्ठत्वमें प्रथम विकास।

परमपदके प्रथम विकासमें आये हुए आत्माकी चर्या—जो आत्माके स्वभावको साधे उसे साधु कहते हैं। आत्माका स्वभाव है ज्ञान, ज्ञान स्वभाव। जो उस ज्ञानस्वरूपकी साधना बनाए रहे, उसका परिज्ञान करता रहे, उसमें उपयोग जमाए रहे, उसमें ही स्थिर होनेका प्रयास रखे उसे साधु कहते हैं। इसीका दूसरा नाम है मुनि। जो अपने आत्मा के स्वभावका सदा मनन करता रहे, मानता रहे उसे मुनि कहते हैं। ये साधु २४ प्रकारके परिग्रहोंसे रहित होते हैं। गात्र मात्र ही उनका परिग्रह रह गया है। साधुजन इतने विरक्त होते हैं और स्वयंके आत्मामें अनुरक्षत होते हैं कि वे आहार करनेको भी विडम्बना समझते हैं। करना नहीं चाहते आहार, पर मानो ज्ञान समझाता है कि अभी ऐसी स्थिति नहीं बनी है। अभी विकासकी उच्च अवस्था नहीं बनी है। यदि असमयमें ही मरण हो जायगा तो बहुतसे लाभके अवसर से खूक जायेंगे। अभी आत्मसंगमकी साधनाके लिए इस शरीरको आहार करना पड़ेगा, ऐसा उन्हें ज्ञान समझाता है और आहार करनेके लिए मानों पहुंचा पकड़कर उठाता है कि चलो आहार कर आओ। यों वे मुनि आहार करते हैं, पर उस आहारसे वे इतने विरक्त हैं कि आहार करनेको वे एक विडम्बना मात्र समझते हैं। केवल आत्मरमणमें ही उनका सारा समय जाता है। पहिले कभी ने मुनि भी बहिरात्मा थे, अपने आपकी सुधि खोए हुए थे। मायाजालमें अपने आपकी सुधि खोये हुए थे, मायाजालमें अपनेको फसाए रहते थे। पर अब उस निननपदसे हटकर अपने आत्माकी सुधि बनाये आये हैं। तो इस विकासको नमस्कार किया है इस मंत्र में। जिस आत्माने अपना ऐसा विकास किया हो वही पूज्य है, किसीका नाम लेकर यहां नमस्कार नहीं किया गया।

अन्तरआत्माका परमपदमें परमात्मत्वरूप विकास—ऐसे ही साधु जब आत्माकी विशुद्ध साधनाके बलसे बहुत ऊंचे उठते हैं, रागद्वेषसे रहित होकर समता परिणाममें आकर निविकल्प समाधिमें रहकर जहां कि ज्ञानज्ञाताज्ञेय एक हो जाते हैं किसी भी परका विकल्प नहीं है निष्ठतरंग निविकल्प स्थिति बनती है तो उस आंतरिक परत तपश्चरणके प्रसादसे यथाख्यात चारित्र प्रकट होता है और घातक कर्मोंका विनाश होता है। पश्चात् वही एकत्ववितर्कं अबीचार शुक्ल ध्यानके प्रतापसे, निविकल्प उच्च समाधिके प्रतापसे चारचातिया कर्म दूर हो जाते हैं उस समय अनन्तज्ञानदर्शन आनन्दशक्तिं इस चतुष्टसे सम्पन्न हो जाते हैं वे आत्मा और वे अरहंत कहलाते हैं। अरहत कोई नाम नहीं है जैसा कि लोग रख लेते हैं। अरहत देवको भेरा नमस्कार

हो । अरहंत शब्दका अर्थ है पूज्य । एक अर्ह पूजार्थ घातु है उससे अरहंत शब्द बना है । उसका अर्थ है पूज्य । अब उस आत्माके अन्तःस्वरूपको देखिए—वह शरीरमें रह रहा है लेकिन कैसा विकासयुक्त है, जिसका ज्ञान समस्त लोकालोकका जाननहार है, जिसका आनन्द परम विशुद्ध आत्मीय आनन्द है, ऐसे अनन्त ज्ञान अनन्त आनन्दमें प्रवर्तने वाले आत्माको अरहंत कहते हैं ।

पूज्य आत्मविकासके वर्णनके समय अपनी भी निगरानी करनेका कर्तव्य इस प्रकरणको सुनकर साथ ही साथ अपनी ओर भी आते जाइये । यह विकास किसी अन्यकी ही कथनी नहीं है, ये स्वभाव मुझमें मीजूद हैं हम भी ऐसे हो सकते हैं । एक मार्ग मिलना है और चलना है । जैसे समुद्रकी भंवरमें फंसा हुआ जहाज जब कभी भंवरकी किसी ओरसे निकलनेका रास्ता धा जाता है तो वडे बेगसे वह जहाज निकल जाता है ठीक इसी प्रकार हमारा उपयोग अभी इन बाह्य पदार्थोंमें फंसा हुआ है । पदार्थोंमें तो क्या फंसा है, इन बाइरी पदार्थोंके विकल्प जालमें फंसा कभी किसी पदार्थमें ज्ञान गया कभी किसी पदार्थमें, यों यह ज्ञान चक्रकर लगा रहा है, डोल रहा है । इस ज्ञानको कभी मार्ग मिल जाय अर्थात् कभी अपने आपके स्वरूप की दिशा मिल जाय तो वह ऐसे बेगसे इस जालसे निकलता है और विशुद्ध ज्ञान प्रकाशमें आता है कि वह अनुभव करले कि बस यही मेरा स्वरूप है यही तत्व है । थोड़ा कुछ पुरुषार्थ करना होगा । प्रारम्भ दशामें मन नहीं लगता है चर्चिंग, स्वरूपके स्मरणमें अपने आत्माकी बात सुननेमें और आत्माके यननमें, लेकिन तभी भी रुचि हो, बस एक उत्साह भर बनाना है अपने आत्माके स्वरूपको समझनेका । देखिये बहुत दुर्लभतासे यह सुनुय भव पाया है, अच्छी जाति, अच्छा कुल प्राप्त हुआ है । बहुतसे लोग अच्छे कुलमें उत्पन्न हुए हैं मगर बहकाने वाले गुरुजन मिलते हैं । बहकाने वाली कुछ पढ़ने सुननेकी उपन्यासकी पुस्तकों मिलती हैं और वे इसी चिह्नलतामें बने रहते हैं । एक आत्माकी यथार्थ कथनी मिलना बहुत दुर्लभ बात है । ऐसे अवसरसे भी लाभ नहीं उठाया जाना है तो यह बड़ी भूल होगी, सत्य ज्ञासनके उपदेशोंके समझेकी बुद्धि पायी है, तिस पर भी यदि समझना नहीं चाहते तो समझ लीजिये कि कितने ये अमूल्य क्षण खोए जा रहे हैं । कुछ थोड़ासा उपयोग लगायें तो आत्म-ज्ञासनके वे सब मध्ये जो बीतराग ऋषि साधुओंने लिखे हैं बताये हैं वे कुछ समझमें आ सकेंगे । और, यही पढ़कर समझकर स्पष्टज्ञान बनेगा जिससे कि फिर इस ज्ञानकी ओर ही अपने उपयोगको बनाए रखनेमें तृप्ति होगी । तो ये साधुजन जब अरहत अवस्थामें आते हैं तो आत्माकी ग्रांतिरिक अवस्था सर्वज्ञताकी, बीतरागताकी और अनन्त आनन्दका अनुभव करनेकी होती है ।

प्रभुमुद्रासे उपदेशलाभ—सकल परमात्माकी हम स्थापना मूर्तिमें करते हैं और जिनेन्द्र मूर्तिके समझ हम उगासना किया करते हैं उस मूर्ति मुद्रामें हम यह तो

निरखें कि अहो ! कैसी शान्त मुद्रा है । उस समय मूर्तिको भूल जायें । मूर्तिके सामने खड़े होकर उस मूर्तिको निरखकर भी कुछ ऐसा साक्षात् ही यानो ये अरहतदेव विराजे हैं, इस तरहकी कुछ वारणा रखकर ऐसो कलगता करके वहाँ निरखें और मूर्तिको भूल जायें और यही हप्तिमें लें कि ये प्रभु कैसे ज्ञानमें ही अपने ज्ञानको ममन किए हुए हैं, इनको पलक रंच मात्र भी नहीं चलती । मानों साक्षात् अरहतं प्रभुका उपदेश मिल रहा है कि शांति चाहते हो तो सर्वकी ममता त्यागकर इस प्रकार अपने आपके स्वरूप में ममन हो जाओ । यही तुम्हें शरण है अन्य कुछ शरण नहीं है । जहाँ जहाँ धूमते हो जिन जिनके निकट बैठते हो, जिसको तुम अपना हित मानकर अपनी शरण समझ कर अपने आपको सौंप देते हो वे कोई भी शरण नहीं है, इस प्रकारकी बातें उस मुद्रा को देखकर उपदेश पानेकी बात सोचें, और थोड़ा यहाँसे भी चित्त हटाकर साक्षात् अरहतदेवकी ओर ले जायें जैसे आकाशमें ममवशरण रचा हुआ है और वहाँ चतुर्मुख भगवान विराजमान हैं । चारों ओर सभा बैठी है । सभीको उनके दर्शन हो रहे हैं । देवदेवियाँ चारों ओरसे गानतान नृत्य करती हुई उल्लासपूर्वक आ रही हैं । मनुष्योंका तांता लगा हुआ है, हाथी बोर सुकर बैल आदिक तिर्यंच भी उस सभामें बैठे हुए हैं उस बीतराग सर्वज्ञ प्रभुके दर्शन करनेकी घुनिमें । जरा उसकी आंतरिक अवस्था तो निरखो, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दमय है ।

प्रभुके देहकी अवस्था —अब प्रभुकी थोड़ी बाहरी अवस्था भी देखो—प्रभु की नासाहृष्टि जैसी है, पलक भी न गिरते हैं, न ऊचे उठते हैं । ऐसी स्थिरताकी स्थिति जिनके शरीरमें अब कोई मलिनता नहीं रही, निर्दोष शरीर हो गया । यहाँ तक निर्दोष हो गया कि वातु उपधातु भी उनमें नहीं रहे, निगोद जीवोंका भी अब स्थान नहीं रहा । जब वे अरहतं भगवान अशुद्ध दशामें थे तब उनके थे सब बातें हुआ करती थीं—उनके धातु-उपधातु भी थीं, अनेक छोटे कीटाणु भी थे, अनन्त निगोद जीव भी थे । निगोद जीव उन्हें कहते हैं जो एक श्वांसमें १८ बार जन्म और मरण किया करते हैं । एक श्वांस उतना समय होता है जितना कि नाड़ीके एक बार उठने और गिरनेमें लगता है । तो ऐसे एक श्वांसमें १८ बार जन्म मरण करने वाले निगोदिया जीव भी उनके शरीरमें होते थे । पर जब इन साधुजनोंको यह अरहतं अवस्था प्राप्त हुई तो उस समय यह शरीर परमीदारिक (उत्कृष्ट) बन जाता है । जहाँ निगोद जीवोंका निवास नहीं, जिसका स्फटिक मणिकी तरह अन्तर्बहाँ दर्शन हो, जिनके शरीरकी छाया भी नहीं पड़ती । हम लोगोंके इन मलिन शरीरोंकी छाया पड़ती है, पर प्रभु होनेके बाद उस परम निर्मल श्रीदारिक शरीरकी जो स्फटिक मणिकी तरह स्वच्छ पवित्र होता है उसकी छाया नहीं पड़ती । यहाँ भी तो काँचकी छाया नहीं पड़ती, कोचकी मूर्ति ही तो उसकी छाया नहीं पड़ती, क्योंकि वह स्वयं प्रकाशमय बन गया तो जिसका शरीर स्वयं प्रकाशमान है, स्फटिक मणिकी तरह स्वच्छ है, धातु उपधातुओंसे रहित है ऐसे परमीदारिक शरीरमें छाया भी नहीं पड़ती ।

वे प्रभु कब तक उस शरीरसे सहित रहेंगे जब तक ये अथवादिग्या कर्म और हैं आत्मा के साथ ।

सकल परमात्माके कबलाहारकी आशंका—अब इस प्रज्ञगमें एक शंकाकार यह शंका रख रहा है कि ऐसे अरहंत प्रभु जब इस शरीरमें करोड़ों और अरबों वर्षों तक रहते हैं तो आहार किये बिना तो शरीर टिकता नहीं है तो वे अरहंत प्रभु भी आहार लेते होंगे । इस आहारको कहते हैं कबलाहार । कबल मायने आस । आस लेकर मुखउे भोजन करनेको कबलाहार कहते हैं । ये अरहंत प्रभु भोजन तो करते ही हैं । यद्यपि जीवनयुक्त हो गए, ठीक है, पर उनका शरीर करोड़ों वर्षों तक भी रहता है । अर्थात् यदि किसी मनुष्यकी आयु अरबों वर्षकी है और वह ८०-९० वर्षकी आयुमें अरहंत बन गया तो बाकी समय तो उस शरीरमें रहेगा । चरम शारीरीका अवाल मरण नहीं होता । अरहंत अवस्थामें यह नहीं होसकता कि जितनी आयु उनकी है उससे पहले मिट जाय । तब इतने वर्षों तक वह शरीर कबलाहार बिना टिक नहीं सकता सी शंकाकारकी शंका है ।

प्रभुके कबलाहारकी मान्यतासे अनन्त आनन्दकी असिद्धि—उक्त शंका का उत्तर दिया जा रहा है कि यदि भगवान्को भोजन करना माना जायगा । कबलाहार माना जायगा, कबलाहार माना जायगा तो फिर उसके अनन्त आनन्द नहीं माना जा सकता । क्योंकि भूख लगती है तो आकुलता होती है यही बात समस्त इन्द्रिय विषयोंमें है कोई भी इन्द्रिय विषय आकुलता बिना नहीं भोगा जाता है । तो प्रभु जो सर्वज्ञ है, अनन्त आनन्दमय है जिसमें अनन्त चतुष्टय प्रकट हुआ है, ऐसे प्रभुके यदि कबलाहारकी बात लायी जाय तो फिर अनन्त आनन्दकी बात नहीं टिक सकती । यों समझिये कि जैसे हम आप मनुष्योंमें कोई नेता होना है उसका कुछ सम्मान हम आप लोगोंसे अधिक होता है तो वह भगवान उससे कुछ और बड़े नेता हो गए । फिर प्रभुता कहां रही ? प्रभुता तो उसे कहते हैं कि जहां हम आप लोगोंसे विलक्षण उच्च विकास प्रकट हुआ है । यदि प्रभुमें कबलाहारकी बात मानी जाय तो फिर उनमें अनन्त आनन्दकी बात नहीं यानी जा सकती । यद्यपि बहुतसे लोग ऐसा मानते हैं कि प्रभुको किसीने भोजन कराया, मेवा खिलाया, किसीने बेर खिलाया, किसीने अपने खानेमेंसे आधा बच गया तो प्रभुको खिला दिया । यों बड़ी भक्तिके समर्थनमें इस तरहकी बातें कही जाती हैं । लेकिन जरा सोचिये तो सही कि इस तरहसे जो खाए वह क्या उत्कृष्ट आत्मा है ? वह कैसे सर्वज्ञ बीतराग और अनन्त आनन्दमय हो सकता है ? प्रभु कहीं इस तरहसे भोजन किया करता है । औरे प्रभुका स्वरूप तो एक अनुपम है । वह प्रभु ज्ञानानन्दरसमें लीन रहा करता है । उनका शरीर कैसे टिका रहता है करोड़ों अरबों वर्षों तक इस बातका आगे बर्णन करेंगे । और यह विषय बहुत विस्तारके साथ बताया जायगा । एक उपयोगको उत्साहित करके हमें प्रभुके

इस सम्बन्धमें इतनी जानकारी बनाना है कि आखिर क्या स्वरूप है और क्या बनाने में प्रभुकी प्रभुता समाप्त होती है। ऐसे उत्तमाहके साथ इस प्रकरणको सुनना है और वह सब सुबोध प्रकरण है। और अगरे आशकी कहानीकी ही बात है। जब यह मैं बहिरात्मापनसे हटकर अन्तरात्मा होकर परमात्म आवस्थाको प्राप्त होऊँगा तो क्या स्थिति बनती है। यह अपनी ही कहानी है। ऐसा जानकर बड़ा सावधानीसे सुनना है।

भोजनमें सुखकी अनुकूलता होनेसे जीवनमुक्त प्रभुके कबलाहारकी पुनः आशका शंकाएँ कहता है कि भोजन करना तो सुखके अनुकूल है फिर भगवानके भोजनका निषेध क्यों करते हो ? यदि भगवान भोजन करते हैं तो उससे उनका सुख और बड़ा, उनके अनन्त सुखका अभाव कैसे हुआ ? जब हम लोग भी भूखसे पीड़ित होते हैं और शक्ति लीण हो जाती है तो भोजन करनेएँ सुख भी उत्पन्न होता है और शक्ति भी उत्पन्न होती है। तो भोजन तो सुख शक्ति ज्ञान सभी के अनुकूल है। तो भगवानके भोजन करने की बात निषिद्ध क्यों करते हो ? सिद्धांत तो यह था कि प्रभु होनेपर, धारिक कर्मोंके नष्ट होनेपर अनन्त ज्ञानदशन सुख और शक्तिकी मिलिंद होती है। तब कबलाहारका निषेध इसीलिए तो किया जा रहा था कि भगवानके सुखमें कमी आ जायगी। आहार करनेसे जब हम लोगोंमें सुख देखा जाता है तो फिर भगवानके सुखका नाश कैसे होगा। यहां शंकाकारने अपनी बात रखी और सिद्ध करना चाहा कि भगवानके बराबर कबलाहार चलता है।

वीतराग अनन्तशक्तिमप्नन प्रभुके कबलाहारकी असंभवता - उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि हम लोगोंको जो सुखादिक होने हैं वे सब कोदाचित्क हैं; कभी होते हैं कभी नहीं। होते हैं और भिट जाते हैं, इस कारण हन लोगोंके सुख विषयोंसे ही उत्पन्न हो सकते हैं। आत्माचीन राश्वत प्रभुवत संसारी सुख सप्तारी जीवोंके नहीं हुआ करते हैं। भगवानका सुख यदि विषयोंसे उत्पन्न हुआ मान लिया जाय तो फिर उनके वह अनन्त सुख न रहेगा। जैसे जब भूख लगती है तो पेट पिचक जाता है। शक्ति भी कम जोर हो जाती है तभी तो भोजनकी प्रवृत्ति करते हैं। तो भगवानके यदि भूख लगी, पेट पिचका कमजोरी आयी तो फिर अनन्तसुख 'अनन्त वीर्य आदिक कहाँ रहे ? इससे कब गाहार माननेपर प्रभुके अनन्त चतुष्टय नहीं रह सकता है। और, फिर स्पष्ट सीधी बात यह है कि जब भगवान रागद्वेषसे रहित हो गये तो फिर उनका भोजन ग्रहण करनेका प्रयास कैसे हो सकता है ? हम आप लोग जब भोजन करते हैं तो राग भी करते हैं और द्वेष भी। कोई बिना रागके तो भोजन नहीं करता ? भोजन खूब कर चुके खूब पेट भर गया और बादमें कोई लहू, हलुवा आदिक लाकर रख दे तो उस खाने वालोंके वे रुक्ते नहीं हैं, और परोषनेवाला आगर पहले तो वे लहू, हलुवा आदिक न दे और पेट भर जाने पर देने लगे तो उस पर कुछ

रोपसा आ सकता है। तो भोजनका ग्रहण करना और छोड़ना ये तो राग और द्वेषका काम है। प्रभुले जब राग और द्वेष ही नहीं रहे तो फिर उनमें कबलाहार करनेकी बात कहां सम्भव है।

परम आदर्श अनन्त शक्त्यानन्दमय प्रभुके कबलाहारकी असंभवता—
अनुमान बना लीजिए, हेतु सिद्ध कर लीजिये। केवली भगवान भोजन नहीं करते क्योंकि रागद्वेषका उनमें अभाव है तथा अनन्त शक्तिका सद्गुव है अच्छा याने कबलाहार करे। तो रागद्वेष रहेंगे और अनन्त शक्ति न रहेगी फिर तो शक्ति क्षीण हो जायगी। इससे प्रभुका स्वरूप सही मानो वे ज्ञान और आनन्दमें निरन्तर लीन रहते हैं। तीन लोक तीन कालके समस्त ज्ञेयोंको जानकर भी समस्त पदार्थ उनके। ज्ञानमें एक साथ भलक रहे हैं तिसपर भी वे तो अपने आत्मीय विशुद्ध आनन्दरसमें लीन रहा करते हैं। प्रभुका स्वरूप यही है। प्रभु तो आदर्श है। उत्कृष्ट है। भगवानकी तो उपासना की जाती है। भगवान परम उपास्य तत्त्व है, और उसको देखें डस तरह कि लो अब तो प्रभु खाने पीने चले, अब खा चुके, अब वापिस आ गये। इस तरह प्रभुको देखने पर तो वे प्रभु परम उपासनाके विषयभूत नहीं रह सकते। प्रभुके कबलाहार नहीं है। श्वेतांबर आदिक अनेक लोग प्रभुको भोजन आदिक करने वाला मानते हैं। क्यों? यह बात समझे बिना कि शरीरकी स्थिति जुदे जुदे प्रकारसे जीवोंकी रहा करती है। सबको एक नापसे नापना ठीक नहीं। अगर हम आप भोजन किये बिना रह नहीं पाते तो प्रभु भी भोजन किये बिना रह नहीं सकता। ऐसा कहना ठीक नहीं देखो मुर्गी आदिक पक्षियोंके अंडेमें जो जीव है वह कई दिनों तक जिदा रहता है, उसे कौन भोजन देता है अथवा देवोंकी सागरों पर्यन्तकी आशु होती है वे कहाँ भोजन किया करते हैं, पर बने रहते हैं। तो जीवोंके शरीर की स्थितियां भिन्न ढंगसे रहा करती हैं। भगवान केवलीके शरीरकी स्थिति देखिए—पवित्र शरीर वर्गसायें निरन्तर आती रहती हैं, उपसे रहा करते हैं। हम भी इस समय भोजन नहीं कर रहे मगर आहार निरन्तर कर रहे हैं। भोजन और आहारमें अन्तर है। भोजन तो है खानेका नाम और आहार है शरीरके किसी भी हिस्सेसे शरीरके परमाणुओंको ग्रहण करनेका नाम। जैसे ये पेड़ खड़े हैं तां पे भोजन नहीं करते किन्तु अग्नी जड़ोंसे जल, क्षाद आदिक खींचकर आहार किया करते हैं जिससे वे बने रहा करते हैं। तो कबलाहारको बात भगवानमें निषिद्ध है, वे भोजन नहीं करते किन्तु पवित्र आहारवर्गसायों का सर्वज्ञसे आहार करते हैं और बने रहा करते हैं। अच्छा यही बतावो कि जब भगवान वीतराग हो गये, सर्वज्ञ हो गए तो फिर ऐसा रागद्वेषका काम क्यों करेंगे?

वीतरागतामें भी भोजनकी संभावनाकी शंका और समाधान—
शंकाकार कहता है कि रागद्वेष न रहने पर भी उहूतसे यही जन भोजन करते हुए देखे

जाते हैं। इसी प्रकार से वे भगवान् भी वीतराग हो गए तो बने रहें वीतराग और भोजन भी करते रहें, इसमें कौनसी आपत्ति आनी है? अब उत्तर देते हैं कि जिन साधुओं को आपने दृष्टांतमें रखा कि भोजन भी करते हैं साधुजन और रागद्वेष भी नहीं रहता है तो यह दृष्टांत यों अयुक्त है कि बिना रागद्वेष के हुए उनमें भोजन करनेकी व्यति नहीं हो सकती। वे साधुजन रागद्वेष से सर्वथारहित नहीं हैं क्योंकि जब साधुजन भोजन करते हैं तो उन्हें प्रमत्तगुण थानमें माना जाता है। १४ गुणस्थानोंमें ५ गुणस्थान तक श्रावकर्ती सम्यकदृष्टि गृहस्थ भी होते हैं, और अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक हैं तो वह चतुर्थ गुणस्थानमें है और अगर सम्यकर्तव नहीं है तो उसमें पहलेसे तीसरा गुणस्थान तक सम्भव है। पर मुनिके छात्र गुणस्थान और उनके ऊरके गुण स्थान होते हैं। तो छठे गुणस्थानको कहते हैं प्रमत्तविरत। इस गुणव्यानमें वह मुनि प्रमादपूर्वक अपनी बृत्ति करतां है। तो ऐसे आचार करने वाले साधुजन भले हाँ श्रावकों से उच्छृङ्खला आचरण वाले हैं, उनमें रागद्वेष बहुत कम है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें पूर्ण वीतरागता है। वहाँ भी रागद्वेष सम्भव है इस कारण यह बात बिलकुल सही है कि केवली भगवान् भोजन नहीं करते क्योंकि उनमें रागद्वेष का अभाव है और अनन्त व्यक्तिका सद्भाव है। यदि प्रभुके कबलाहार मान लिया जाय तो वे प्रभु भी सरागी हो जायेंगे। सर्वत्र देख लो, जैसे मुसाफिर लोग, गृहस्थ लोग जब भोजन करते हैं तो क्या वे वीतराग हैं? वीतराग तो नहीं हैं, इसी प्रकार यदि प्रभु में कबलाहारकी बात मान ली जायगी तो प्रभु भी सरागी हो जायेंगे।

भोजनमें रुचि अरुचिकी अनिवार्यता—भोजन करनेमें राग द्वेष किस तरह होते हैं सो भी देखो—प्रथम तो स्परण और अभिलाषा इन दो भावोंके आये बिना कबलाहार नहीं लिया जाता। स्परण तो चलता ही रहता है ना जैसे दान खानेकी बात सोचते हैं, दूसरे जब खानेकी इच्छा हो, अभिलाषा हो तभी तो भोजन का ग्रास खानेके लिए उठते हैं। तो प्रभु केवली यदि ग्रास लें, कबलाहार करें तो इन के मायने हैं कि उन्हें भोजनके स्वादका स्थाल आ गया और उसके खानेकी इच्छा हो गई। तो इस बातसे उनमें राग आ गया कि नहीं? और खाते थे, खाते खाते खूब पेट भर गया, डटकर खा चुके तो तृप्त हो गये। अब तृप्त हो जानेके बाद फिर उस भोजनसे अरुचि हो गई और छोड़ दिया। भोजन करके तृप्त हो जानेके बाद फिर किसीने बढ़िया चीजें लाकर उपस्थित कर दिया तब तो उस परोसने वालेके ऊर के प्रभु दोष भी करने लगेंगे। तो राग और द्वेष इन दोनों बातोंके बिना कबलाहार सम्भव नहीं है।

प्रभुका अर्न्तबाह्य लक्षण—देखिए! यह बात ऊरी लक्षणकी कही जा रही है और इसमें भातरी मर्म भी सम्भवित है। जो व्यातिशाकर्मोंके रहित हो गए, देव कहलाते हैं। शास्त्रोंकी प्रमाणिता माननेमें जिनको एक मूल सर्वोच्छिप्ट प्रमाण

माना जाता है ऐसे शगवानका स्वरूप किस तरहका होना चाहिए जो हम लोगोंके हृदयमें ऐसी श्रद्धा बन सके कि यही प्रभु उत्कृष्ट देव हैं, उपासनीय हैं इनका वचन कभी असत्य नहीं हो सकता है। वह स्वरूप अनन्त चतुष्टयरूप है। वे प्रभु अनन्त ज्ञानके द्वारा समस्त विश्वको जानते रहते हैं और उस ही अनन्त ज्ञानके द्वारा अपने आत्माका अवलोकन करते रहते हैं, अनन्त आनन्दके द्वारा परम निराकृत रहा करते हैं और अनन्त शक्तिके द्वारा अटल आनन्द रसका पान किया करते हैं। तो प्रभु अनन्त चतुष्टयसे सम्पन्न है। प्रभुका ऐसा उत्कृष्ट स्वरूप मिट जायगा ऐसा सम्भव नहीं। इस ही चतुष्टयके प्रतापसे प्रभुने सर्वतः परमसमता प्राप्त की है। ऐसी ही शक्ति हम आपमें भी मौजूद है और ऐसी ही प्रभुता हम आप भी पासकते हैं।

परसम्पर्कमें आकुलताओंके अनुभवन — यही देख लीजिये एक मोटीसी बात — अपने आपपर जरा दृष्टि देकर सुनो — जो शरीरसे निराला रूप रस गंध स्वर्ण आदिको रहत है, जानत देखत जिसका काम है उसको लक्षणमें लेकर सुनो ! हम क्या करते हैं ? जाता रहते हैं। वर्तमान हालतमें भी कल्पनायें कर लें, विकल्प बना लें, आकुलतायें भोग लें, सुख भोग लें, इतना ही तो हम आप कर पाते हैं। लेकिन जरा यह तो विचार करें कि ये सारे खटपट करना इस मुझ आत्माका काम है क्यों ? बाहरमें जिन जिनमें हम आप अपनी दृष्टि फंसा रहे हैं उनसे इस मुझ आत्माका कोई नाता रिक्ता है क्यों ? ये सब इस मुझ आत्माके कुछ बनकर रहेंगे क्या ? अरे जब यह शरीर भी इस आत्माका नहीं है तो अन्य बाह्य पदार्थ तो इस आत्माके हो ही क्या सकते हैं ? लेकिन मिथ्या बुद्धि ऐसी लगी है कि बाह्य पदार्थोंमें जो कि इस जीवसे बिल्कुल भिन्न चीजें हैं उनमें आपा माना जा रहा है। आचार्य समझाते हैं — अरे ! क्यों व्यर्थ इन बाह्य चीजोंमें आपा बुद्धि रख रहे हो ? ये तुम्हारे कुछ भी नहीं हैं लेकिन कोई सुनता ही नहीं उन आचार्योंकी बात। कैसे नहीं है ये मेरी चीजें ? इन पर मेरा ही तो अधिकार है ऐसी मिथ्या बुद्धि रखकर निरन्तर आकुलतायें मचायी जा रही हैं। परिजनोंमें, इन घन वैभवोंमें इतना अधिक स्नेह करके उनमें अपनायतकी बुद्धि रखकर इतनी आकुलतायें मचायी जा रही हैं, जरा भी विश्राम नहीं ले सकते, यही सारा दुःखका कारण है।

प्रभुस्वरूपकी विषरीत मान्यतासे भक्तकी हानि - प्रभुके आंतरिक श्रीपादिक सारे झंझट हट गये और आत्मामें अतिशय प्रकट हो गया, सर्वज्ञता, प्रकट हो गयी और इस ही कारण परमोदारिक शरीर हो गया, उत्कृष्ट निर्मल रस्टिक मणि की तरह स्वच्छ शरीर हो गया, हड्डी माँस मज्जा आदिक जिस शरीरमें नहीं रही, निर्मल, सुन्दर पवित्र शरीर हो गया यहीं अन्तर्गमें तो अन्य चतुष्टयका लाभ हो गया और बाहरमें शरीर भी पवित्र हो गया, ऐसे प्रभु दर्शीय हैं। उनके गुणोंका स्मरण करें और अपने आत्माको पवित्र करें। अब कदाचित वे प्रशु भोजन करने चले

जायें और उपासक बैठो हैं उनकी उपासना करनेके लिए तब तो उपासकके दिनमें एक ठेस पहुँचेगी । उन प्रभुमें अनन्त शक्ति होनेके कारण उनमें कभी भोजन करनेकी वृत्ति नहीं होती । बात तो छोटी सी कही जा रही है —कोई कहता है कि प्रभु भोजन करते हैं कोई कहता कि प्रभु भोजन नहीं करते, और कोई यह कहने लगे कि भोजन करते मान लो तो क्या ? क्यों भगड़ते हो ? प्रभु तो प्रभु ही है । औरे प्रभु यथा तथा वृत्तिमें प्रभु कैने रह सकता है । इसका निर्णय किए बिना प्रभुकी प्रभुता नहीं रह सकती । यह भी कोई सावारण विषय नहीं है । निर्णय करना होगा कि प्रभु तो उपेक्षा की मूर्ति है, बीतरागताकी मूर्ति है । अतएव प्रभुके निकट ठहरनेसे उनको दृष्टिमें लेनेसे शान्ति मिलती है ।

शान्तिका उपाय रागद्वेषका श्रभाव और कृतार्थताका अनुभव - शांति का उपाय रागद्वेषको मिटाना है । किसी भी प्रकारका रागद्वेष रहते हुए शांतिकी आशा करना व्यर्थ है । रागद्वेष रहित प्रभुको अग्रने चित्तमें लेनेसे यहाँ भी रागद्वेष मंद हो जाते हैं । आनन्द उसका मिलता है । विषयोंके भोगनेके समय भी जो सुख मिलता है वह विषयोंसे निकलकर नहीं मिलता है । विषयोंके भोगनेके प्रसङ्गमें जितने अंशमें वे दुखकी कल्पनायें मिटी जितने अंशमें यह सुखका अनुभव करता है । शान्ति मिलती है रागद्वेषके हटनेसे । शान्ति मिलती है अपनेको कृतकृत्य अनुभव करनेमें । किसी भी प्रसङ्गमें देख लो । कोई काम करनेको पड़ा है, कोई छोटी कोठी बनानी है तो जब तक वह नहीं बन पाती तब तक कितनी विद्युतलता बनी रहती है । कितनी अशान्तिकी बातें, कितने भगड़े झंझटकी बातें, कितनी व्यवस्था सम्बन्धी बातें रहा करती हैं और उस कोठोंके बन जानेपर वह कल्पित मालिक शान्तिका अनुभव करना है । वह शान्ति उस कोठीसे निकलकर तो नहीं प्राप्ती । उस कोठीके बननेके कारण नहीं आधी, किन्तु अब जो यह भाव बैठ गया कि कोठी बनवानेका काम अब नहीं रहा, इस भावसे शान्ति है, काम करनेसे नहीं । खूब इस बातको गौरसे अनेक घटनाओंसे देखते जाइये—जब कभी भी किसी कामके प्रसङ्गमें शान्तिका अनुभव होता है तो अब यह काम भेरेको करनेको नहीं रहा । इस प्रकारके भावोंके कारण शान्तिका अनुभव होता है । कामसे शान्ति नहीं मिलती । भगवान तो पूर्ण कृतकृत्य है, उनको अब कुछ करनेको नहीं पड़ा, विकल्प भी नहीं रहा, वे तो एक निरन्तर स्वपरको समस्त विश्वके जाननहार रहा करते हैं । कैसा विशुद्ध ज्ञान होता है प्रभुका जिस ज्ञानके कारण आकुलताका रंचमात्र भी अवकाश नहीं है । जब कि यहाँ हम आप लोग इस तरहसे ज्ञान कर रहे हैं कि जिसमें आकुलतायें टपकती रहती हैं । एक आकुलता मिटी दूसरी आ गई । कैसा ज्ञान बना है । कोई पुरुष यह सोचे कि मैं इतने काम कर लूँ । इसके बाद फिर मैं बड़ा सुखी हो जाऊगा । फिर कोई झंझट ही न रहेगा । औरे झंझट कैसे न रहेगा । जब तक चित्त

में रागभाव है तब तक एक के बाद दूसरा काम और सामने आ जायगा । कहांसे निष्ठावा होगा ।

कार्य कर करके निवृत्त होनेकी आशाकी विफलतापर एक किंवदन्ती के रूपमें घटान्त - एक ऐसी किम्बदन्ती है कि एक बार नारदजी नरकलोकमें धूमने गये तो वहां उन्हें खड़े होने तककी भी जगह न मिली, वहांपर नारकी जीव ठसाठस भरे हुए थे । वहांसे फूँफलाकर नारदजी नंकुण्ठ गये । वहांपर सब जगह पड़ी थी । बस वड़की भगवान ही अकेले वहांपर पड़े हुए सौज कर रहे थे । तो नारदजी बोले - तुम बड़े पक्षपाती हो नरकमें तो इतने जीव भर दिये कि वहां खड़े होनेकी जगह नहीं । और इस बैंकुण्ठमें एक भी जीव नहीं है । साराका सारा खाली पड़ा है । तो वह लौकिक भगवान बोला - अच्छा हम तुम्हें इस बातका अधिकार देते हैं कि तुम जितने जीव यहाँ ला सकते हो ले आओ । वे नारदजी पास प्राप्त करके मध्यलोकमें आये, सो एक बूढ़ोंसे कहा - चलो हम तुम्हें बैंकुण्ठ ले चलें । तो उस बूढ़ोंने सुनकर नारदको गाली दी । हम ही मिले मरने मिटनेको, क्योंकि सभी जानते हैं कि बिना मरे तो बैंकुण्ठ मिल नहीं सकता । नारदजीने ८१० बूढ़ोंसे कहा मगर कोई भी बूढ़ा बैंकुण्ठ चलनेको तैयार न था । इसके बाद नारदजी जवानोंके पास गये और बोले - चलो हम तुम्हें बैंकुण्ठ ले चलें । तो नवयुवक बोले - कि बात तो बहुत अच्छी है, यह तो हमारे कल्याणकी बात है, किन्तु महाराज ! अभी तो हम इस काममें फँस हैं नहीं तो जरूर आपके साथ बैंकुण्ठ चलते । अभी तो हम आपके संग बैंकुण्ठ न जा सकेंगे ! ऐसा ही उत्तर सभी जवानोंने दिया । खैर, बूढ़ोंसे तो वे ठीक ही रहे । बूढ़ोंने तो नारदको गाली भी दी है, नवयुवकोंने तो नारदजीकी बातको अच्छा तो फिर भी कहा । वहांसे भी हैरान होकर नारदजी लड़कोंके पास आये । एक लड़का चबूतरेपर बैठा हुआ माला फेर रहा था उससे नारदने कहा - बेटा ! तुम हमारे साथ चलो, हम तुम्हें बैंकुण्ठ ले जलेंगे ! तो वह लड़का बड़ा खुश हुआ और साथ चल दिया । थोड़ी दूर जाकर बोला - महाराज ! दो दिन बादमें हमारी शादीकी तारीख है रिश्तेदार लोग भी आ चुके हैं, अब ऐसे माँकेपर बिना कहे सुने यों ही चल देना अच्छा नहीं मालूम होता । सो कृपा करके आप हमें ५ वर्षका समय दें । ५ वर्षके बादमें जब आप आयेंगे तो जरूर हम चलेंगे, ठीक है नारदजी ५ वर्ष के बादमें पहुंचे और बोले - बेटा, अब तो चलो ! तो वह बोला - महाराज ! लौके गर्म है, बच्चे का मुख तो देख लें, सो आप १० वर्षके बादमें आना तब हम जरूर चलेंगे, फिर १० वर्षके बादमें नारदजी पहुंचे । बोले - बेटा ! अब तो चलो । तो वह बोला - महाराज ! लड़का समर्थ हो जाय, अपने पैरों खड़ा हो जाय तब हम आपके साथ चलेंगे, सो आप १० वर्षके बादमें आना । फिर १० वर्षके बादमें पहुंचे नारदजी, तो वह बोला - महाराज ! जरा नाती-पोतोंका मुख तो देख लें, सो आप १० वर्षके बादमें आना हम आपके साथ जरूर चलेंगे । फिर १० वर्षके बादमें नारद

जी वहाँ पहुँचे । उस समय उसने कहा — महाराज ! लड़के कुपूत निकल गये, हमने बड़ा श्रम करके लाखोंकी सम्पत्ति जोड़ी है, इसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है । सो कृपा करके आप दूनरे भवमें आना तब हम आपके सङ्ग अवश्य चलेंगे । सो जिस कोठेमें अधिक धन भरा था उसीमें वह संरण करके सर्प बना, नारदजी वहाँ भी पहुँचे और बोले कि अब तो चलो । तो वह फना हिलाकर कहता है — महाराज ! धन की रक्षा करनेके लिए तो हम यहाँ आये हैं, हम तो इस धनको छोड़कर इस भवमें भी आपके साथ बैकृष्ण नहीं जा सकते ।

अभीसे शक्त्यनुरूप धर्म करनेमें जुटनेका अनुरोध — आप यह बतलाओ कि कोई मनुष्य यह सकलर करे कि मैं इतना काम कर लूँ इसके बाद फिर निश्चिन होकर वर्ष ही वर्ष करूँगा, क्या बन जायगी बात ? भाई वर्ष करनेके लिए मध्यको लम्बा न करो । जो जिस स्थितिमें है उसीके माफिन अपनी योग्यताके माफिक शक्ति को न छिपाकर ज्ञान ध्यान संयममें लगे । आगेकी कोई आशा करे कि मैं आगे अब्द्धा बनूँगा और इस समय तो लस्टम पर्स्टम जैसे हैं बने रहने दो । तो क्या यह उम्मीद की जा सकती है कि आगे अच्छे बन ही सकेंगे ? तो जिस मार्गसे चलकर ये प्रभु हुए हैं उसी मार्गको हम अपनी शक्ति न छिपाकर आगयें और चलें तो कुछ ही समय बाद कुछ ही भवों बाद हम आप उस प्रभुताको पा सकते हैं ।

वीतरागतान्यथानुपपत्तिसे सकलपरमात्माके कबलाहारका अभाव — अपने आपके आत्मामें शाश्वत विराजमान जो एक ज्ञान ज्योतिस्वरूप अंतस्तत्त्व है उसकी जिन साधुओंने भावना की तदूप अपनेको अनुभव किया उनके उस परम तप-इच्छणके प्रतापसे चार धातियाँ कर्म नष्ट हुए और अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति प्रकट हुई । बाह्यमें शरीर भी परमोक्तुष्ट हो गया । ऐसे सशरीर परमात्मा सकल परमात्माके सम्बन्धमें शंकाकार यह कह रहा था कि उनका यह शरीर हजारों लाखों करोड़ों वर्षों तक भी जीता रहता है वह क्या भोजन किये बिना रह सकता है ? वे प्रभु भी भोजन किया करते हैं । उसके समाधानमें बताया गया कि प्रभु यदि आहार करने लग जायें तो उनमें अनन्त आनन्द व अनन्त शक्ति आदिक कैसे रह सकते हैं । जो कभी भी कबलाहार करता है, ग्रास खाता है वह स्मरण अभिलाषा आदिक पूर्वक खाता है । चाहे वडे ऊँचे योगी साधु भी हों लेकिन जब भी उनकी प्रवृत्ति आहारके लिए होती है तो किसी न किसी रूपमें राग उनके भी रहता है । तो अन्य पुरुषोंकी भाँति जब भगवानमें भी अभिलाषा रुचि अस्त्रि आदिक सिद्ध होते हैं तो फिर उनमें वीतरागता कहाँ रहीं ? और वीतरागता नहीं है तो फिर आपत्पना कहाँ रहा ?

वीतरागताके स्मरणसे भक्तका लाभ — अनेक लौकिक लोग भट यों कह बैठते हैं कि जैन मन्दिरमें क्या रखा है ? वहाँ तो एक बिना श्रूङ्गार की, बिना कपड़ों

की, बिना आभूषणोंकी एक नगनमूर्ति विराजमान है। वहाँ क्या लेंगे? शृङ्खार और वस्त्र सहित भगवानकी मूर्तियें मन रमाने वाले जैसे लोगोंको या स्वच्छंद जनोंको यह शंका हो सकती है, लेकिन उन्हें यह भी पता है कि जिस समुद्रमें पानी लबालब भरा है उसमेंसे कभी एक भी नदी निकली, और जिस पहाड़पर पानीका एक बूँद भी नहीं दिलाता उस पहाड़से नदियोंके स्रोत निकलते हैं। तो जहाँ धन वैभव पुत्र परिजन शृङ्खार आभूषण आदिक सब खट्टट है वहाँसे तो कुछ मिलता भी नहीं है और जहाँ वीतरागता है वहाँ उस वीतरागमय प्रभुके स्मरण व उनकी भक्तिसे पुण्य रस बढ़ता है और स्वयमेव सर्व सुश्च सुविधायें सर्व वैभव सर्वफल प्राप्त हो जाते हैं। जहाँ सरागताकी उड़ानानाकी जा रही है वहाँ लोगोंका पुण्यरस बढ़ाकर पापरूपमें परिणत हो सकता है। और किर उनसे पूछा जाए कि तुम क्या चाहते हो? धन वैभव या लोकमें इज्जत पोजीशन विषयोंके सुख? ये तो सब विडम्बनायें हैं जो कि जीवके साथ अनादिकालसे लगी हुई है इनसे कभी तृप्ति जीवको हो नहीं सकती। यह जीव हर भवमें जहाँ भी नई जगह जन्म लेता है वहाँ ही इस वैभवके अ आ इ है से पाठ पढ़ने लगता है। उसे यह दृष्टि नहीं रहती है कि इससे कई गुना वैभव तो मुझे पिछले भवों में प्राप्त हुआ था। उस वैभवके आगे तो यह कुछ भी नहीं है। इस प्रकारकी दृष्टि इम जीवकी नहीं बनती।

जीवनकी एकमात्र समस्या भीया! कुछ तो सोचिये इन विषयसुखोंसे इस जीवको लाभ क्या मिल जाता है, आखिर इस पर्यायिके छूटनेके बाद भी तो कुछ हालत होगी। क्या यह ठेका ले रखा है कि इस पर्यायिके पादमें उत्तरोत्तर हमें अच्छी ही पर्यायें प्राप्त होंगी। यह एक बहुत बड़ी समस्या है सामने जिसकी ओर लौकिक-जनोंकी दृष्टि ही नहीं जाती। लौकिक जनोंकी दृष्टितो इस पर है कि हमारा ऐसा परिवार है ऐसा वैभव है, ऐसी इज्जत है अधिक। मगर बताओ तो उसी कि मरण होनेके पश्चात् ये तुम्हारी कुछ मदद कर सकेंगे क्या? और, मदद करना तो दूर रहा, इनके कारण सारा बिगाड़ हो बिगाड़ है। न जाने किन गतियोंमें जन्म लेना होगा। फिर तो निम्न गतियोंमें मन भी न मिलेगा, विषयकशायोंमें ही फसे रहना होगा। वहाँ तो अबने हितका पथ ही न मिल सकेगा। यहाँ तो ज्ञान मिला है, श्रष्ट मन है। ऐसा विचार कि सकते हैं कि यह मैं आत्मा सर्वसे निराला ज्ञानपूर्ज हूँ। यदि मैं इस प्रकार का चिन्तवन करता रहूँगा तो इसी धर्म साधनाके प्रतापसे समस्त प्रकारके सुख साधन व कल्याणका मार्ग मिलता रहेगा। धर्म साधन करनेमें जीवका स्वयंका हित है, इसमें किसी पर एहसान लादनेकी बात नहीं है। खुदको विपत्तियोंसे बचानेके लिए धर्म साधनों की जाती है। वो धर्म है अपने आपके सहज यथार्थस्वरूपका अनुभवन करना।

प्रभुताके कारण प्रभुमें अनेक अतिशय - धर्मके प्रतापसे जो धातिया कर्मों

का नाशकर प्रभु हुए हैं उनमें ऐसा अलौकिक अतिशय है कि वे ग्रासाहार नहीं करते और विशुद्ध शरीरवर्णण ये जो उनके शरीरमें चारों तरफसे आनी हैं उनके बलपर ही वे बड़े सुन्दर जीवनसे जीते हैं। जब तक उनके आयु हैं और आयु समाप्त होनेपर भी शरीररहित लिद्ध भगवान हो जाते हैं। उनके आहारकी अभिलाषा आदिकी बातें करना यह तो उनका अपमान करना है, उनके स्वरूपको बिगाड़ना है। यदि यह कहो कि भगवानके अभिलाषा तो नहीं है तिसरी भी वे आहार ग्रहण करते हैं क्योंकि प्रभु में इप ही प्रकारका महान अतिशय है कि उनके इच्छा नहीं है फिर भी खाते हैं, यह तो कोई भली बात नहीं है। यदां भी यदि किर्ब के लानेकी इच्छा न हो और जबरदस्ती लिला दिया जाय तो उस पर क्या बंतती है। तो यही अतिशय मानलो कि प्रभु ग्रासाहारके बिना ही शुद्ध पवित्र वर्णणाओंके बनसे शरीरमें स्थित रहा करते हैं। ऐसे अतिशयशाले प्रभुमें अनन्त गुण हैं। एक यह भी गुण है कि वे प्रभु आकाशमें गमन करते हैं। जो भगवान हो जाते हैं, जिनमें प्रभुता अद्भुत हो जाती है वे हम आप लोगोंकी तरह जमीन पर चलते फिरते बोलते-चालते नजर न आयेंगे। प्रभु सभीको दर्शनमें तो आ सकते हैं पर उनसे बातचीत करने आदिका सम्पर्क कोई बना नहीं सकता है। वे प्रभु तो अपने अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शी, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्दसे सम्पन्न रहा करते हैं। उनके दर्शन और भठ्ठ जीवोंके भाग्यसे और उनके बचनयोगसे जो दिव्य ध्वनि प्रकट होती है उसका श्रवण सभी लोग करते हैं। तो प्रभुका दर्शन एवं उनकी दिव्य ध्वनिका श्रवण ये दो लाभ जीवोंको प्राप्त हो सकते हैं पर उनसे कोई अनी प्राइवेसी नहीं बना सकता है।

सदेह प्रभुमें आहारमात्रकी अप्रतिषिद्धता अब शंकाकार कहता है कि आहारके अभावमें तो प्रभुके शरीरकी स्थिति ही नहीं रह सकती। इसीको हेतुसे सिद्ध करते हैं कि भगवानके शरीरकी स्थिति ग्रासाहारपूर्वक होती है। शरीरके स्थित होनेमें जैसे हम लोगोंके शरीरकी स्थिति है, हम लोगोंका आहार किये बिना टिक नहीं सकता तो प्रभु का भी शरीर ही तो है और हम आप जैसा ही तो शरीर प्रभुका था। उसकी भी स्थिति ग्रासाहारके बिना सम्भव नहीं है। इस शंकाके उत्तरमें पूछते हैं कि इस अनुमानस क्या प्रभुमें यह सिद्ध करना चाहते कि उनके आहारमात्र होता रहता है या यह सिद्ध करना चाहते कि वे कोर खाकर ग्रास लेकर आहार किया करते हैं? यदि यह कहो कि हम तो आहारमात्र निष्ठा करना चाहते हैं। तो ठीक है, चूंकि वह देह है और वह इति हुआ है स्थिर है तो आहार जल्द करते हैं यह तो सही बात है। आहारमात्रका निषेध नहीं है प्रथमगुणस्थानसे लेकर सयोग केवली व्यञ्जन अर्थात् १३वें गुणस्थानमें आहार रहता है यह तो मानते हैं पर प्रभुके कबला-हार नहीं रहता, अ य प्रकारका आहार रहता है याने सदेह प्रभुमें नोकर्माहार रहता है। यहां भी हम आर बैठे हैं, कुछ खा पी नहीं रहे फिर भी यह न सपना चाहिए कि हम आहार नहीं कर रहे। अरे हमारे शरीरके प्रत्येक अंगमें पैरोंसे लेकर शिर

तक सभी जगहसे अनेक सूक्ष्म परमाणु आते रहते हैं। बुझापेमें होता क्या है कि परमाणुओंका आना अधिक रहता है और बिखरना अधिक रहता है। जवानीमें क्या होता है कि परमाणुओंका आना अधिक रहता है और बिखरना कम रहता है। पर ये परमाणु आते बगाबर हैं जब तक कि यह बेद्द है।

षड्विध आहारका वर्णन आहार ६ प्रकारके होते हैं - एक तो नोकर्मा-हार, शरीरकी वर्गणाओंका आहार कितना ही आप कोट वर्गेंरह पहिनकर बैठे हों, शरीरको पूरी तरह ढके हों फिर भी वे वर्गणायें इनी सूक्ष्म हैं कि आपके कोट वर्गेंहको पार करके शरीरके अन्दर आती रहती हैं। तो शरीरकी वर्गणाओंका आते रहना यह है नोकर्महार। दूसरा होता है कर्महार। अर्थात् जीवमें कर्म आते रहते हैं। हम आपके नोकर्महार भी चल रहा है और कर्महार भी चल रहा है। तीसरा होता है कबलाहार। कबल संस्कृत शब्द है। इसे हिंदीमें कौर या ग्रास कहते हैं। तो इस लेकर खानेको कबलाहार कहते हैं। यह भी हम आपमें कभी २ होता है। किसीका दिनमें एक बार किसीका २-३ अथवा ४ बार। चौथा होता है लेथाहार। जैसे दृक्षकी जड़ोंमें पानी अथवा खाद प्रादिका लेय हो जाता है उससे वे आहार ग्रहण करते हैं। तो यह हुआ लेथाहार। ५ वां आहार है ओजाहार। जैसे अँडेमें रहने वाले पक्षीके बच्चेको उसकी माँ अपनी छातीसे सेंक करनी है उस छातीकी गर्मसि वह नाखून जैसे कड़े अँडेके अन्दर बैठा हुआ बच्चा आहार ग्रहण करता है। तो यह हुआ ओजाहार। छठवां होता है मानसिक आहार। देवगतिके जीवोंको जब क्षुधा लगती है तो उनके मानसिक चिन्तन होता है, वे मनसे विचारते हैं और उन मानसिक विचारोंसे ही उनकी तृप्ति हो जाती है। लोग कहा करते हैं कि उनके कंठसे असृत भरता है। जैसे हम आप लोग भी जब बड़े सुख चैनमें बैठे होते हैं, किसी प्रकारकी कोई चिंता नहीं होती है तो गलेमें से एक गुटका नीचे उतर आता है। वह बड़ा भीठा लगता है। इसका आप अनुभव भी कर सकते हैं। तो ऐसे दी समझिये कि जब उन देवोंको हजारों वर्षोंमें कभी क्षुधाकी वेदना महसूस होती है तो वे मानसिक चिन्तन करते हैं और उनके कंठसे असृत भड़ जाता है। यह हुआ मानसिक आहार। अब यहां जरूरी नहीं है कि जीवमें छहों प्रकारके आहार होने ही चार्हाह्ये तत्र देह टिका रहे। किसी जीवका किसी प्रकारका आहार है किसीका किसी प्रकार। तो नोकर्महार नामक आहार इस शरीरकी स्थितिको बनाये रखता है।

अनाहारक अवस्था— अनाहारक जीव तो संसारमें या तो निग्रह गतिमें मिलेगा और ऊँची अवस्थामें केवली भगवान जब समुद्रघात कर रहे हैं तब मिलेगा। अथवा १४ वें गुणस्थानमें मिलेगा। फिर संसारसे अतीत सिद्ध भगवान अनाहारक मिलेंगे। संसार अवस्थामें जब कोई जीव मरता है, एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर को ग्रहण करने जाता है और वह मोड़ा लेकर जाता है तो सास्तेमें उस जीवके अन्ता-

हारकता है अर्थात् शरीर वर्गणाश्रोंको वह जीव ग्रहण नहीं कर रहा है । देखिये ! एक यह ही विग्रह गतिकी स्थिति है इन सासारी जीवोंमें, जहां कि शरीर वर्गणायें नहीं आतीं किन्तु अड़में रहने वाला जीव जिसके आजाहार होता है, उसके भी नोकर्मा हार है, बे देव जिनके मानसिक आहार होता है उनके भी नोकर्माहार है । और ये दृष्टि जिनके लेप्याहार है उनके भी नोकर्माहार हैं जो कबलाहार करते हैं, ग्रास लेकर भोजन करते हैं उनके भी नोकर्माहार चल रहा है । केवल नोकर्माहार नहीं है, तो विग्रहगतिमें रहने वाले जीवोंके नोकर्माहार नहीं हैं ।

विग्रहगतिमें अनाहारक अवस्थाका तीन समयसे अधिकका अनवस्थ-कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि जेसे मनुष्य मरा तो मरकर जब तक उसकी तेरहीं न हो जाय, जब तक १०, २०, ५० अविकारमन्य नो । अर्थात् खाने-पीने वाले लोग खा—नी न लें तब तक उस जीवको पथ नहीं मिलता और वह यत्र-तय डोलता रहता है, तो ऐसी बात नहीं है । एक भव छूटनेके बाद दूसरे भवमें उत्तम होनेमें रहता है, तो ऐसी बात नहीं है । एक भव छूटनेके बाद दूसरे भवमें उत्तम होनेमें रहता है । और, एक समय कितनेको कहते हैं ? आँखेंको एक पलकके जीघ्रतया एकबार गिरने व उठनेमें जितना समय लगता है उसमें अनगिनते समय होते हैं । तो उन अनगिनते समयोंमेंसे अधिकसे अधिक ४ समय लगेंगे जीवको नवीन शरीर ग्रहण करनेमें । जीवके गुजरनेके बाद अर्थात् एक भव छूटनेके बाद यह जीव ऊरसे नीचे, पूरबसे पश्चिम, उत्तरसे दक्षिण ये जो आकाश पंक्तियां हैं उनके अनुपार जीव चलता है, विदिशाश्रोंमें नहीं जाता है । जेसे यहां शरीरशारी लोग जैसा चाहे घूम सकते हैं वै—यह जीव नहीं घूम सकता । उसकी तो शरीर छूटनेके बाद सीधी गति चलती है । च है पूरबसे पश्चिम, चाहे उत्तर से दक्षिण और चाहे ऊरसे नीचे । विदिशाश्रोंमें उस जीवकी गति नहीं होती । यदि किसी जीवको सीधमें नवीन जाम लेना है तो वह एक ही समयमें शरीर ग्रहण कर लेगा । किनीको जानेमें एक मोड़ लेना है जैसे पूरबके बीचसे तो वह मरा और दक्षिणके बीच कहीं पैदा होना है तो पश्चिमों पश्चिमकी ओर चला, यों एक मोड़ लेनेमें उस जीवको नवीन शरीर धारण करनेमें तो समय लग जाते हैं । इसी प्रकार दो मोड़ में तीन समय लग जाते और तीन मोड़में चार समय नवीन शरीरको ग्रहण करनेमें लग जाते हैं । सासारकी कोई भी जगह ऐसी नहीं है, कहींसे भी कहीं जीव पैदा हो उसे तीन मोड़से अधिक लेनेकी गुणांश नहीं है । तो जीवको नवीन शरीर ग्रहण करनेमें ४ समयसे अधिक नहीं लगते । तो नवीन शरीर ग्रहण करने और पुराने शरीरके छोड़नेके बीचके समयमें जीव अनाहारक रहता है,

नोकर्माहारसे प्रभुदेहकी स्थिति—प्रभु देहमें यदि नोकर्माहारकी बात कहते हो तो प्रभु आहारक हैं ऐसा कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है । तो आहारमात्रकी बात सही है, पर कबलाहार होनेको ही आहारक कहा जाय यह बात युक्त नहीं है क्योंकि

देवता भी तो कबलाहार नहीं करते । किर भी तो उनके शरीरकी स्थिति सांगरों-पर्यन्त रहा करती है । सागर किसे कहते हैं ? उसका प्रमाण जाननेके लिए गणित नहीं है । वह तो उसमासे ही जाना जा सकता है । कल्पना करो कि २ हजार कोसका लम्बा, चौड़ा, गहरा एक गड्ढा है और उसके अन्दर इतने छोटे-छोटे बालोंके टुकड़े भर दिये जायें कि जिनका कैंचीसे दूसरा टुकड़ा न जा सके और उस पर हाथी भी चला दिये जायें । जब सूत्र ठासाठस वह गड्ढा उन बालोंके टुकड़ोंसे भर जाय तो उन प्रत्येक टुकड़ोंको प्रति १०० वर्षमें निकाला जाय तो समस्त टुकड़ोंको निकालनेमें जितना समय लगेगा । उसका नाम है व्यवहारपल्य, और इस व्यवहारपल्यका असंख्यात गुना होता है उद्घारपल्य और उस उद्घारपल्य का प्रसंख्यात गुना होता है अद्घारपल्य, और १ करोड़ अद्घारपल्यमें १ करोड़ अद्घारपल्यका गुणा किया जाये उसे कहते हैं एक कोड़ाकोड़ी पल्य, और ऐसे १० कोड़ाकोड़ी पल्य व्यतीत हों तो उसका नाम है एक सागर । ऐसे ३३ सागरों तक की आयु देवोंकी होती है और ३३ सागर तककी आयु नरकोंमें भी होती है । भला देवोंके शरीरकी इतने समय तक स्थिति रह जाय, जब यह सम्भव है ग्रासाहारके बिना तो प्रभुका यह परमौद रिक शरीर ग्रासाहारके बिना करोड़ों वर्षों तक रहे इसमें क्या आड़वंय है ? उनके शरीरमें शरीर वर्णणाओंका आहार निरन्तर रहता है ।

साधारण जनोंके देहसे प्रभु देहकी तुलनाकी उपहासता —यदि यह कहो कि हम देवताओंके शरीरकी बात नहीं कहते । हम तो यहीं श्रीदारिक शरीरकी स्थितिकी बात कहते हैं । जो जो श्रीदारिक शरीरकी स्थिति है । श्रीदारिक शरीर छोटे मोटे शरीरका नाम है जैसे मनुष्य और तिर्यञ्चोंके शरीर । तो श्रीदारिक शरीर शरीरकी जितनी स्थिति है वह कबलाहारपूर्वक होती है । जैसे हम लोगोंके शरीरकी स्थिति श्रीदारिक शरीरकी स्थिति है और वह खा पीकर रहता है । श्रीदारिक शरीर की स्थिति भगवानके भी हैं । इससे देवताओंके शरीरका नाम लेकर भी हेतुमें दोष नहीं दे सकते हो । समावान करते हैं कि यह भी बात सारही न है । भगवानका श्रीदारिक शरीर अब हम लोगों जैसा श्रीदारिक शरीर नहीं रह गया, वह परमौदारिक शरीर हो गया । तो यहांके श्रीदारिक शरीरकी स्थितिकी तुलना प्रभुके परमौदारिक शरीरकी स्थितिसे नहीं की जा सकती । प्रभुका वह परमौदारिक शरीर हम आप लोगोंके शरीरकी स्थितिसे विलक्षण है तभी तो केवलज्ञान अवस्था होनेपर किर केश नहीं बढ़ते । जैसे यहां हम आप लोगोंके बाल बढ़ते रहते हैं, बटवाने पड़ते हैं, अथवा साधुजन केशोंच करते हैं, केश बढ़ा करते हैं, केवल ज्ञान होनेके बाद, सर्वज्ञ वीतराग प्रभु होनेके बाद जब तक उनका शरीर है वह पवित्र परमौदारिक शरीर है । उसमें केश नहीं बढ़ते । जितने केशोंको निए हुएमें केवलज्ञान हो उनना ही रहता है । तो जैसे केश नख आदिकंका न बढ़ना यह अतिशय केवलज्ञान होने पर है ऐसे ही भौजन का न होना यह भी एक अतिशय है, इसमें कोई विरोध नहीं है ।

भगवानके स्वाधीन आनन्दके स्मरणका सत्य आनन्द—भगवानका आनन्द तो अपने आपके स्वरूपानुभवनका आनन्द है और वह उनमें सहज होता है। जैसे अन्य द्रव्य धर्म, अवर्भ, आकाश, काल आदिक अचेतन हैं, पर अचेतनकी तुलनामें बात नहीं कह रहे हैं। एक शुद्धकी तुलनामें कह रहे हैं। जैसे धर्म, अवर्भ, आकाश आदिक द्रव्य शुद्ध द्रव्य हैं, इनका परिणामन जैसे विशुद्ध हैं, इनका परिणामन जैसे अपने स्वरूपमें चल रहा है इसी प्रकार सिद्ध प्रभुका भी अनुभवन परिणामन युद्ध निरन्तर चलता है और अरहंत देवका भी इसीप्रकार शुद्ध अनुभवन चलता रहता है वे इस शुद्ध परिणामनसे निरन्तर आनन्दयुक्त रहा करते हैं। दुव हो कोई तो प्रवृत्ति करें। विषयोंमें प्रवृत्ति दुखके बिना नहीं हो सकती। छोटेसे लेकर बड़े तकके सासारी जीव भी जो भोजनकी प्रवृत्ति करते हैं वे आकुलतापूर्वक ही करते हैं। प्रभुके तो किसी भी समय रंचमात्र भी आकुलता भभव नहीं है। मन्दिरमें जो व तु पाषणकी मूर्ति है वह तो अरहंत भगवानकी मुद्राकी मूर्ति है। उसका दर्शन करके हमें केवल मूर्तिमें ही दृष्टि नहीं टिकाना है, किन्तु प्रभुको उस मूर्तिको देखकर अपने चित्तको उन प्रभुके गुणों पर लगाना है और प्रभुके गुणोंका बार बार स्मरण करना है। उस प्रभुके सम्बन्धमें हीं यहाँ यहाँ चर्चा चल रही है कि प्रभुका आंतरिक स्वरूप क्या है और बाहरी स्वरूप क्या है?

अल्पज्ञोंकी तुलना करके प्रभुके कबलाहार मानते पर इन्द्रियज्ञान का भी प्रसङ्ग होनेसे प्रभुताके भी अभावका प्रसङ्ग—जो लोग ऐपा कहते हैं कि सकल परमात्मा अरहंत भगवानके आदारिक शरीर ही तो है। सो आदारिक शरीरकी स्थिति, कबलाहारके बिना नहीं सम्भव है इस कारण वे ग्रासका आहार करते ही हैं ऐसा कहने वाले लोग यह भी सिद्ध न कर पायेंगे कि भगवानका प्रत्यक्षज्ञान अतीनिद्य होता है। जब उनके शरीरको अपने समान समझकर कबलाहार सिद्ध किया जा रहा है तो उनके ज्ञानको भी अपने ही ज्ञानके समान समझकर उसे इन्द्रियज्ञान मानना पड़ेगा, अतीनिद्य प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसा कहा जा सकता है कि भगवानका ज्ञान इन्द्रियजन्य है, यद्यसि प्रत्यक्ष ज्ञान शब्दसे भी कह लो। भगवानका प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय जन्य होता है, प्रत्यक्ष होनेसे। जैसे हम लोगोंके प्रत्यक्षज्ञान। अपने धर्मसे। अपनी वर्तमान रवैयासे भगवानकी तुलना करके कबलाहार मानो तो फिर सभी बातोंकी तुलना करके भगवानकी सारी बातें अपने ही समान मान लो। हम आहार करते हैं तो भगवान भी आहार करते हैं ऐसा माननेपर मानते जाओ कि हमारा ज्ञान इन्द्रियजन्य है तो प्रभुका ज्ञान भी इन्द्रियजन्य होगा। हम यहाँ सरागी हैं तो प्रभुभी सरागी होंगे। यों अनेक अटपट बातें अपती तरह भगवानमें मान लोगे। हम चूंकि बोलने वाले हैं इसलिए रागसहित हैं, भगवान भी तो बक्ता हैं वे भी तो उपदेश करते हैं दिव्य व्वनि द्वारा तो के भी रागसहित हो गए। फिर तो भगवानकी भगवत्ता ही क्या रही सभी बातें अपनी जैसी भगवानमें मानलो।

प्रभुमें यहांकी तुलना और स्वेच्छाभिमतमें अनेक अनिष्ट प्रसङ्ग—
 शंकाकार कहता है कि हम लोगोंमें देखी गयी बातें, कुछ तो वहां हैं और कुछ नहीं हैं
 कहते हैं कि यह तो स्वेच्छाकारिताकी बात है। जो तुम्हारे सिद्धांतसे अनफिट बैठा
 उसे और तरहसे कहने लगे और जो बात तुम्हारे सिद्धांतके अनुकूल बैठी उसे और
 तरहसे कहने लगे। अरे या तो सब बातें वही मानो यह सब कुछ विनक्षण मानो।
 इस तरह जब भगवान रागी भी हो गए और इन्द्रियजन्य ज्ञानी भी हो गए तो वह
 केवली ही न रहे। भगवान ही न रहे। तो फिर किसमें कबलाहारकी सिद्धि करते
 हो? यहां हम आप लोगोंमेंसे किसी मनुष्यके प्रति कबलाहार सिद्धि करनेका प्रयास
 करता है क्या। क्योंकि सभी मनुष्य भोजन करते हैं। हम लोगोंकी तुलनासे उनके
 शरीरकी तुलना नहीं दी जा सकती। यहां है श्रीदारिक शरीर जिसमें कि फोड़ा
 फुन्सी होते, बदबू निकलती, पसीना आदिक अनेक प्रकारके विकार हैं, पर प्रभुका
 शरीर तो परमदारिक है, वहां किसी भी प्रकारका कोई विकार नहीं है। उनका
 शरीर स्फटिकमणिकी तरह स्वच्छ तथा हृष्टपुष्ट है। यदि हम लोगोंके शरीरकी
 स्थिति भोजनपूर्वक रहा करती है तो इसके मायने यह नहीं हैं कि सबके शरीरकी
 स्थितिको भोजनपूर्वक कहने लगोगे। अन्यथा तो जैसे घटरट चौकी आदिक पदार्थमें
 आकार पाया जानेसे यह सिद्ध हो रहा है यहाँ कि ये किसी एक बुद्धिमानके द्वारा
 उत्पन्न किए गए हैं। तो शरीर आदिकमें भी तो आकार हैं। किसीका कैसा ही आकार
 है किसीका कैसा तो ये सब शरीरको देखकर यहां भी यह मानना पड़ेगा कि ये भी
 किसी एक बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हैं। पर ऐसा तंत् तुम भी नहीं मानते। स्वेत-
 आम्बरोंके प्रति कह रहे हैं कि इसमें तो एक ही मत है कि यह जगत उपादान निमित्त
 पूर्वक बना है इसके बनाने वाला कोई एक बुद्धिमान नहीं हैं लेकिन जब यहाँ हम आप
 लोगोंके शरीरकी स्थिति भोजनपूर्वक देखकर भगवानके शरीरकी स्थितिको भी
 भोजनपूर्वक बनाना चाहते हो तो यहांके घड़ा आदिकका आकार देखकर इनकी रचना
 किसी कुम्हार आदिकसे होनेके कारण फिर द्वृश्न शरीरोंका आकार देखकर इनकी
 रचना भी किसी एक बुद्धिमानके द्वारा रखी गयी ऐसा मानना पड़ेगा। दूसरी बात—
 कभी कभी आंखमें लिकारके कारण या आंख पर अंगुली आदिक रख देनेके कारण
 दो चन्द्रमा देखने लगते हैं तो ये जो दो चन्द्रमा दिख रहे हैं वे निरालम्ब हैं या
 सालम्ब ? तो कहते हैं कि वह तो निरालम्ब ज्ञान है। जो जाना जा रहा है वैसा वहां
 नहीं है। एक जगह निरालम्ब ज्ञान पाया गया तो फिर जितने ज्ञान हैं सबको निरा-
 लम्ब मान लो क्योंकि तुमने तो यह व्याप्ति बना रखी है कि हमारे शरीरकी स्थिति
 भोजनपूर्वक रहा करती है इसलिए प्रभुकी सी स्थिति भोजनपूर्वक है। एक जगह
 भोजनपूर्वक देहस्थिति होनेसे सर्वत्र देह स्थिति भोजनपूर्वक रहा करती है। यों माना
 सो एक ही जड़ एक जगह निरालम्ब ज्ञान बन गया तो सभी जगह निरालम्ब ज्ञान
 मानलो। इस तरह यहाँसे तुलना करके प्रभुके देहको भोजनपूर्वक मानना ठीक

नहीं है। इसमें सबसे बड़ी आपत्ति तो यह आती है कि प्रभु फिर वीतराग सर्वज्ञ न ठहरेगे। जो वीतराग है और सर्वज्ञ है उसकी कभी भी राग द्वेष भरी प्रवृत्ति नहीं हो सकते। भोजन करने जैसी बात रागद्वेष के बिना किसीके होती हो तो बताओ। कोई बड़े ऊंचे सन्यासी योगी भी हों तो भी उनके किसी न किसी अंशमें राग रहता है तभी उनकी भोजनमें प्रवृत्ति होती है।

अल्पज्ञदेहस्थितिके प्रकारका प्रभुदेहस्थितिमें अभाव शकाकार कह रहा है एक उपलिम्ब मिटानेके लिये कि जैसे ये पदार्थ घट पट आदिक किसी एक बुद्धिमानके द्वारा रखे हुए हैं उस प्रकारके ये शरीरादिक नहीं पाये जाते इसलिएहठको किसी बुद्धिमानपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कहो कि यही बात तो यहाँ है। जैसे औदारिक शरीरकी स्थिति हम लोगोंको भोजनपूर्वक देखी जा रही है उस प्रकारकी स्थिति परमोदारिक शरीरकी नहीं हुआ करती है इसलिये प्रभुके देहकी स्थिति कबला हारके बिना ही रहती है। और जैसे ज्ञान ज्ञान सब एक है दो चन्द्रमाश्रोंका ज्ञान हो रहा तब भी ज्ञान है और यहाँ दरी चौकी आदिकका ज्ञान ही रहा वह भी ज्ञान है तो ज्ञानपेकी समानता होनेपर भी दो चन्द्रमाश्रोंका ज्ञान तो निरालम्ब है, पर यह दरी चौकी आदिकका ज्ञान तो सालम्ब है। इसी प्रकार शरीरकी स्थिति हमारे भी है और प्रभुके भी है। स्थितिकी समानता होनेपर भी हमारा शरीर भोजनपूर्वक स्थिर रहता है और प्रभुका देह निराहार रहकर भी स्थित रहता है। प्रभुके देहमें चारों ओरसे पर्वत शरीरवर्गणाये आती रहती हैं और उससे जीवन रहता है।

अल्पज्ञोंसे प्रभुकी विलक्षणता एवं परमोपेक्षा—जो पुरुष आत्मसाधना करके एक ब्रपनी अलौकिक दुनियाको अथवा आत्मस्वरूपको प्राप्त हो चुका है, जहाँ अब कोई विकल्प तरङ्ग नहीं उठ रहे हैं, ऐसा जो एक सकल परमात्मा है, उसका अंतः स्वरूप निरलिये तो सही, वह ज्ञानसमृद्ध है ज्ञान्त है, क्षोभरहित है, कल्पनाश्रों का बहाँ अवकाश नहीं है। ऐसे परिस्पृणे केवल ज्ञानसे समृद्ध वह अनन्त आनन्दका निरन्तर अनुभवन करने वाला है, उसमें हमें अन्य बात क्या घटा सकते हैं? उनके सामने उनके कुटुम्बी जन चाहे वियोगसे कितना ही रायें, दुखी हों, विषाद करें, पर वे वहाँ किसीकी नहीं सुनते। यों कह लीजिये कि वे पत्थरकी जैसी सृष्टि बन जाते हैं, उनके किसीसे स्नेह नहीं जगता। वे भगवान पत्थरकी तरह अचेतन पदार्थ तो नहीं हैं पर वहाँ ऐसी निष्कम्पता है कि उनके किसीसे भी रंच राग द्वेष नहीं हो सकता। उनकी तुलना अपने शरीरसे करके कबलाहारकी बात कहना युक्त नहीं। यदि कहो कि दूसरे प्रकारके औदारिक शरीर हो ही नहीं सकते। जैसा हमारा शरीर है वैसा हमारा शरीर है वैसा ही प्रभुका शरीर है, अन्य तरह हो ही नहीं सकता, याने क्या ऐसे भी लोग कहीं होंगे कि जो भोजन न करते हों, तो भगवान भी ऐसे किसे हो सकते हैं कि वे आहार न करते हों। ऐसी अगर सम्भावना और कल्पना रखोगे तो किर

कोई यों ही कह सकता है कि सर्वज्ञ भी कोई होता होगा क्या ? हम लोगोंमें तो कोई नहीं देखा जाता सर्वज्ञ ? सब अलग हैं, अधिक जाना तो क्या पर सबको तो नहीं जान सकते । कोई पुरुष ३ फिट ऊँचा कूद सकता है, कोई १० फिट ऊँचा कूद सकता है तो इसके मायने वह नहीं कि कोई १० कोण ऊँचा भी कूद सकता है ! और, कोई अधिक जानकार बन गया पर उसकी सीमा तो है, ऐसा तो न हो जायगा कि कोई सारे विश्वको भी जाने ! तो यों सर्वज्ञना सिद्ध नहीं कर सकते । हम लोगों के शानीरसे ज्ञानसे, अनुभवनसे प्रभुके शरीर, ज्ञान, अनुभवन आदिमें विलक्षणता है ।

ज्ञानवनश्चात्माकी परमशक्तिः न रूपता — यहाँ अपने आपके उस ज्ञानस्वरूपमें अरते उपयोगको हुबाकर एक रस कर दिया उसकी तुलना हम यहाँके मिथ्याहृष्टजनों के रवैयेसे कर सकते हैं क्या ? देखिते एक हृष्टांत लें । खारा समुद्र जल है उस ही जलसे कोई जलांश एक नमककी डली बन गया अब नमककी डली बनकर चारों ओर धूम रही है, यहाँ वहाँ बिक रही है एक दूसरेके काम आ रड़ी है और सुयोगसे वही नमककी डली किसीके हाथसे छूटकर या किसी प्रकार समुद्रमें गिर जाय तो वह नमक की डली घुलकर उस समुद्रमें एकरस हो जाती है । अब उसकी किया, हलन चलन या वह पिण्डरूपता अब नहीं रही, वह तो सम हो गयी । यों ही निरविद्ये कि इस ज्ञान समुद्रमें से यह उपयोग डली जैसी बनकर बाहरमें निकलकर यत्र तत्र डोल रहा है, मोहर्में पगा हुआ है । कौन ऐसा अनुभव करता कि जिस उपयोगवे में दुनियाके इन समस्त पदार्थोंको जानता हूँ वह उपयोग क्या है ? मैं ही तो हूँ उपयोगमें तन्मय ही तो हूँ, मैं कहाँ डोलता हूँ, मैं कहाँ अन्यत्र जाता हूँ । ऐसा अनुभव करनेवाला तो यहाँ कोई नहीं दिख रहा । जो दिख रहे उनका ज्ञान कभी यहाँ गया कभी वहाँ गया । कभीबम्बर्वृग्या तो कभी लड़के बच्चोंमें गया, तो कभी बन दौततमें गया । यों यह उपयोग बाहरमें यत्र तत्र डोलता रहता है । और अरते उस उपयोगको ज्ञान समुद्रमें डुबो दो । मैं ज्ञानरूप ही तो हूँ, उस ज्ञानमयको ज्ञानकी ही विधिसे ज्ञानमयमें डुबो दो और अनुभव करने लगो कि बस मैं तो ज्ञानमय ही हूँ, इससे बाहर कहीं कुछ नहीं, इतना ही मात्र मैं हूँ । इसमें एकरस करके एक भावना करके कोई, जब उसे यहाँ भी अन्य विकल्प नहीं, अन्य प्राकृतांता नहीं, तो भना इस महान् पुरुषार्थके बलसे सदाके लिए निराकुल हो गए हैं ऐसे प्रभुमें अपनी तुलना करके उनके स्वरूपको विद्या-ड़ना कहाँ तक युक्त है ?

छ्यास्थ देहसे प्रभुदेहकी विलक्षणताका संक्षिप्त विवरण — अब जाना ना कि हम जैसे पुरुष भगवान नहीं हैं । भगवान तो हमसे विलक्षण हैं । हम प्राप्त लोक तो अलग हैं पर सर्वज्ञ हैं प्रभु । तो यहाँ भी मान लो कि हमारे शरीरकी स्थिति तो भोजनपूर्वक है, किन्तु उनके देहकी स्थिति बिना भोजनके पवित्र शरीरवर्गणः औके ग्राने जानेसे रहती है । प्रभुका वह देह सदा तो न रहेगा, जितनी आयु प्रभी शेष है

उतने तक रहेगा । याने यहाँ कोई साधु पुरुष, अब पंचमकालमें तो नहीं होते प्रभु, लेकिन कल्पना करनो, चतुर्थकालमें सही, विदेह क्षेत्रमें तो अब भी प्रभु होते रहते हैं, तो कोई साधु पुरुष जो प्रभु बना वह हम आर जैसे मनुष्य ही तो थे, मनुष्यों जैसा ही तो आहार उनका था, मनुष्यों जैसे ही मल-पूत्र करते, पसीना भी आता, भोजन आदिक भी होते थे, ऐसे साधु पुरुष जब याने अन्तः ज्ञानस्वरूप आत्माकी भावना करते हैं, याने उत्पयोगको उस आत्मस्वरूपमें मरण कर लेते हैं तो वहाँ कर्मोंका विच्छिन्न होने लगता है । तो चार धारिणीकर्म जहाँ नष्ट हुए कि वे पुरुष सर्वज्ञ केवली भगवान बन जाते हैं । तो हो तो गये वे भगवान अरहंत पर अरी वह शरीर मौजूद है । मौजूद तो है वह शरीर किन्तु पवित्र परम उत्कृष्ट शरीर हो जाता है । जड़ों कि मल-पूत्र, रुचिर, पसीना आदिक धातुओं नहीं होती, जहाँ अनेक कीटाणु रहा करते थे वे भी अब उस शरीरमें नहीं रहे । जैन तपश्चरणके माहात्म्यसे ये बात मानी जाती है कि प्रभुके देहमें अब मल नहीं है, प्रभुका मुख अब चारों ओरसे दिखता है ।

यह मानलो कि उनके भुक्तिका अभाव है ।

प्रभुके अन्यथातिशयकी भाँति भुक्त्यभावमें भी देहस्थितिका अतिशय जब समवरणमें प्रभु विश्वजमान होते हैं तो प्रभुकी सभा गोव लगती है चारों तरफ ! जैसे आजकल वक्ताके आगे ही सभा बैठाया जाती है, पीछे लोग नहीं नैठते क्योंकि वक्ताके मुखकी ओर ही श्रोता जन बैठना पसन्द करते, ताकि वचनोंके घटबढ़से भी अर्थका स्पष्ट व्यवगम हो । इस तरह प्रभुकी सभामें मामने ही श्रोता बैठें सो बात । उनकी सभा चारों ओरसे लगती है । बारह सभायें होती हैं । तो प्रभुके तपश्चरणका ऐसा माहात्म्य है, उस प्रभुताका ऐसा अतिशय है कि चारों ओर उनका मुख दिखता है । जो पीछे बैठते हैं उन्हें भी मुख दिखता है और जो अगल बगल बैठते हैं उन्हें भी मुख दीखता है । किसीको भी बाजा नहीं आती । सभाके सभी श्रोता जन उपदेश सुनते हैं और भाव भरते रहते हैं और ऐसा चारों ओर मुख दिखना सम्भव भी है । जैसे स्फटिक संणिकी प्रतिमामें उनका मुख पीछे से भी दिखता है, अगल-बगलसे भी । ऐसे ही वूंकि प्रभुका देह भी स्फटिक मणिके समान स्वच्छ हो गया है, दूसरे उसमें देवकृत अतिशय है जिनके कारण उनका मुख चारों ओर दिखता रहता है । जैसे वाँ नपश्चरणके प्रतापसे अनेक बातें मानी जाती हैं इसी प्रकार यहाँ भी मानलो कि बिना भोजनके उनके शरीरकी स्थिति रहती है इसमें क्या अपराध है ?

देहस्थितिके विभिन्न आधार यहाँर भी दिखता है कि कोई मनुष्य ४-५ बार खाकर अपने शरीरको स्थिर रख सकता है तो कोई मनुष्य १- बार खाकर ही अपने शरीरको ज्योंका त्यों स्थिर रखता है । और जो पुरुष अपने चित्तने यह कल्पना कर लेते हैं कि बिना चार-पाँच बारके खाये शरीर टिका नहीं रह सकता तो उनका शरीर एक बार खानेपर बैसा न टिक सकेगा क्योंकि उन्होंने अपने चित्तमें

दुर्बलता पहिलेसे ही बसा ली । और, जिसने अपने मनमें यह बात बसा ली कि और, ४-५ बार खानेसे कथा प्रयोजन ! एक बार ही खानेमें शरीर ज्योंका त्यों बना रहता है, तो ऐसा सोचने थाला व्यक्ति घूंकि पहिलेसे ही अपने दिलको मजबूत बना लेता है, इसलिए एक बार खानेपर ही वह ज्योंका त्यों हृष्ट-पृष्ट बना रहता है । अभी दस-लक्षणी वर्गेरह पर्वके दिनोंमें बहुतसे लोग एकाशन किया करते हैं तो घूंकि वे पहिले से ही एकाशन करनेकी बात भनमें ठान लेते हैं इसलिए उन ८-१० दिनोंमें एकाशन करते रहनेपर भी उनका शरीर ज्योंका त्यों बना रहता है, पर ज्यों ही दशलाक्षणीका पर्व व्यतीत होता है त्यों ही कि अपने मनको ऐसा ढीला बना लेते हैं कि बिना ४-५ बार खाये रहा नहीं जाता है । गर्भकि दिनोंमें बहुतसे लोग घूंकि अपने मनको ढीला कर लेते हैं इसलिए वे बार बार बिना पानी पिये रह नहीं पाते । और, जिनका एक बार ऋन्न-जल ग्रहण करनेका नियम है उन्हें उन गर्भकि दिनोंमें भी कुत्त प्रेशानी नहीं होती । हाँ, कभी थोड़ी वेदना हो सकती है, पर थोड़ी ही देरमें वह वेदना शांत हो जाती है । तो इस त्यागका आत्मबलके साथ भी सम्बन्ध है । देखो बाहुबलि स्वामी १ वर्ष तक लड़े रहकर तपस्या करते रहे, ऋन्न-जल कुछ भी नहीं ग्रहण किया, फिर भी उनके शरीरकी त्वचिति विशिष्ट बनी रही । तब शरीरकी स्थितिमें आयु-कर्म प्रवान निर्मित है और भोजन आदिक तो सहायक मात्र हैं । शरीरका स्थित रहना भिन्न भिन्न योग्यताओंपर आधारित है । भगवानका शरीर स्थित रहता है और पुष्ट बना रहता है उसका कारण है कि चारधातिया कर्मोंमें जो अन्तराय कर्म है वह उनके नहीं रहा, उनके पवित्र शरीरमें पवित्र परमाणु आते-जाते रहते हैं जिसके कारण भगवानके शरीरकी स्थित बड़ी रहती है ।

केवलज्ञान होनेपर देखकी दर्शनीयताका नियत अतिशय—कोई साधु यदि बृद्ध है दुबला-पतला है, हड्डियाँ निकली हैं, विरूप हो रहा है और उस साधुको निविकल्प समाधिके बलसे हो जाय केवल ज्ञान, भगवान बन जाय तो फिर वैसा शरीर न रहेगा जैसा कि साधु अवस्थामें था । केवलज्ञान होनेके बाद ही प्रभुका शरीर सुन्दर हृष्ट पुष्ट, युवावस्थासम्पन्न, दर्शनीय हो जाता है । यदि ऐसा न हो तो उसे देखकर लोग कहें कि वह देखो लूँ भगवान बैठे हैं, वह देखो विरूप भगवान बैठे हैं । यों फिर उस भगवानके प्रति भक्तिका प्रवाह नहीं रह सकता । तो प्रभु होनेके बाद वह शरीर अवस्था पवित्र हो जाता है । तो अपनी अल्पज्ञ अवस्थासे प्रभुके कैवल्य की अवस्था से तुलना करके यदि प्रभुका भोजन मानते तो और भी बातें मानो । प्रभु के अब पलक भी नहीं गिरते, यन्त्र तत्र देखते भी नहीं, प्रभु बोतराग हैं, सर्वज्ञ हैं, उत्कृष्ट शरीरमें हैं, उनके ये भोजन आदिकके नटखट और पसीना आदिक, नख केशका बढ़ना आदिक ये सब चीजें अब प्रभुके उस शरीरमें नहीं रहते हैं । उनके आयुकर्मका अभी सङ्क्राव है इसलिये देहमें विराजे हैं । जब मनुष्य-आयु पूर्ण हो जायगी तो देहको छोड़कर सिद्ध बनेंगे । यों देव दो प्रकारके हैं अरहंत और सिद्ध अर्थात् सदेह परमात्मा

और अदेह परमात्मा । जब तक किसी साधुके के बलज्ञान होनेके बाद शरीर बना रहता है तब तक है शरीर सहित परमात्मा और आयुकर्म पूरा होनेके बाद जब समस्त कर्म दूर हो जाते हैं, देहरहित हो जाना है ऐसे परमात्माको कहते हैं सिद्ध भगवान् ! इस तरह दो तो देव हैं । एनोकार मन्त्रमें जो ५ पद बताये हैं उनमेंसे देव और गुरु ये दो बताये हैं । अरहत और सिद्ध तो हैं देव और आवार्य उपाध्याय तथा मावु ये गुरु हैं ।

प्रभुदेहस्थितिकी अल्पज्ञजनदेहस्थितिसे तुलनाका व्यामोह—शङ्काकार कहता है कि शरीरकी स्थिति भोजनके अभावमें कुछ माह तक रह जायगी या एक वर्ष तक रह जायगी पर सदाकाल तो नहीं रह सकती । और जिन साधु संतोंने एक वर्ष तकके भी उपवास किये हों यदि वे श्री जीवित रहते हैं तो आखिर उन्हें भी तो बादमें भोजन करनेकी प्रवृत्ति करनी पड़ती है । अब इस शङ्काके समाधानमें पूछते हैं कि यह बात कैसे समझी जाय ? मरणपर्यन्त कबलादार बिना देहकी स्थिति नहीं पायी जाती, इस कारण यह बात मानी जाय तो इस ही हेतुसे सर्वज्ञ वीतरागकी भी प्रसिद्धि होगी । तो चाहा यह या कि सर्वज्ञकी सिद्धि हो और कबलाहारकी सिद्धि हो, पर सर्वज्ञका सिद्ध करना मुश्किल हो गया । यदि कहो कि सर्वज्ञ तो है क्योंकि सर्वज्ञताके ढांकने वाले रागादिक दोष हैं, ज्ञानावरण आदिक कर्म हैं तो उनमें हानिका अतिशय पाया जा रहा है कि किसीमें तो दोषावरणकी हानि कम है किसीमें और भी कम है और किसीमें बहुत ही कम है । तो इससे सिद्ध है कि किसी आत्मामें दोष और आवरण बिल्कुल भी नहीं है । इससे सिद्ध है कि वे भगवान् होगये जीवन्मुक्त होगए, उनको किसी भी प्रकारकी इच्छा या वेदना नहीं होती है । वे तो अनन्त आनन्दमय हैं अतः प्रभुके देहकी तुलना हम आप अपने शरीरसे नहीं कर सकते ।

वेदनीयोदयसे प्रभुके कबलाहारकी सिद्धिकी अशक्यता अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि वेदनीय कर्मके सङ्घावसे तो भगवान्के भोजनकी सिद्धि होती है । कर्म होते हैं ८ प्रकारके जिनमें अधातिशय कर्ममें एक है वेदनीय कर्म । वेदनीय कर्मके उदयसे कुवा तृष्णा आदिककी अनेक बाधायें होती हैं । प्रभुमें तो चार धातियाकर्मोंका नाश हो गया है ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय आदिकका, किन्तु अभी ४ अधातिशय कर्म तो हैं, वेदनीय कर्म भी हैं । वेदनीय कर्मके उदयसे साता भी होता है और असाता भी होता है । जब वेदनीयके ये साता और असाता दोनों उदय सम्भव हैं सकल परमात्माके तो वहाँ क्षुधवेदना भी है, उसका प्रतिकार है कबलाहार । तो कबलाहारकी प्रकृति उस परमात्माके होती है । अनुयान बना लोजिये कि भगवान्में वेदनीय कर्म अपना कब देने वाले होते हैं । कर्म होनेसे अयुकर्मका उदय है तो शरीरमें स्थित अने रहते हैं । आयुकर्म अपना फल दे रहा है ना, इसी प्रकार वेदनीय कर्म भी भीजूद है ले वह भी अपना फल देगा । सपाधानमें

कहते हैं कि यह कहना युक्त नहीं इस अनुमानसे यदि तुम फल सात्र सिद्ध कर रहे हो तो ठीक है, होजाय सिद्ध, पर भोजनरूप फल विठ्ठ करते हो तो यह सम्भव नहीं ! अब जो श्रधातिथा कर्म शेष रह गये हैं वे इच्छासे सम्बन्ध रखकर जितना फल देने वाले हैं वे फल न देंगे और इच्छाके बिना जो फल हुआ करते हैं वे फल हो जायेंगे । तो वेदनीय कर्म इच्छाके बिना फल देनेमें समर्थ नहीं है । जैसे नामकर्मका उदय है, जिससे शरीरकी वर्गणायें बन रही हैं तो वे इच्छाके बिना सम्भव हैं । आयुकर्म इच्छाके बिना सम्भव है, पर भोजन पान करना अदिक तो इच्छाके बिना सम्भव नहीं है । इस कारण मोहनीयका अभाव होनेसे प्रभुको भूख प्यासकी वेदना व भ्रुक्ति नहीं होती ।

प्रभुके क्षुधानिमित्तक वेदनीयके उदयकी असिद्धि—यदि यह कहो कि क्षुधा वेदनाका कारणभूत वेदनीयका सङ्घाव है इसलिए कबलाहार सिद्ध हैं तो यह पूछा जा रहा है कि क्षुधा आदिक वेदनाका कारणभूत वेदनीयका सङ्घाव कैसे जाना है ? यदि यह कहो कि भूख प्यास देखे जाते हैं इससे सिद्ध है कि मूख प्यासकी वेदना का सङ्घाव है तो इसमें अन्योन्याश्रित दोष हो गया । आगर भूख सिद्ध हो तो क्षुधाका निमित्तभूत वेदनीयका उदय सिद्ध हो और जब भगवानमें क्षुधानिमित्तक वेदनीय कर्मका सङ्घाव सिद्ध हो तो क्षुधाफलकी सिद्धि हो और क्षुधाफलकी तिद्धि हो तो क्षुधानामक वेदनीय कर्मकी सिद्धि हो । प्रभुमें शरीरवाचा निमित्तिक वेदनीयका उदय नहीं है उनमें अब अनन्त आनन्द प्रटक हुआ है । उनमें अब किसीभी प्रकारकी बाबा सम्भव नहीं है । यदि कहो कि असाता वेदनीयका उदय है इसलिए कबलाहार सिद्ध हो जायगा, असिद्ध नहीं । यह बात यों युक्त नहीं है कि जो वेदनीय कर्म रह गहा है उसमें अब उतनी सामर्थ्य नहीं है ।

मोहनीयके उदय बिना वेदनीयमें फलदानसामर्थ्यका अभाव — अष्टकमें के वशसे यह जीव पराधीन होता है ज्ञानावरणके उदयसे जीवका ज्ञान प्रकट नहीं हो पाता है जब ज्ञानावरणका क्षय हो जाता है तब केवलज्ञान प्रकट होता है जिससे समस्त लोकालोकका ज्ञान हो जाता है । यह प्रभुकी बात कही जा रही है । प्रभुमें ज्ञानावरण कर्म नहीं है । दर्शनावरण कर्मके उदयसे आत्माका दर्शन गुण प्रकट नहीं होता । अब प्रभुमें दर्शनावरणका क्षय हो गया है तो समस्त लोकालोकके पदार्थोंका जो ज्ञान हो रहा है, ऐसा ज्ञान करते हुए आत्माका दर्शन हो रहा जिससे दोनों बातें कह लीजिए कि समस्त लोकालं कक्षा दर्शन हो रहा है और स्वका भी दर्शन हो रहा है । प्रभुमें मोहनीयकर्मका अभाव हो गया इसलिए उनमें ममता मिथ्यात्व क्षोम कागद्वेष आदि नहीं रहे वे वीतराग हो गये । अन्तरायकर्मका क्षय होगया अतः वे अनन्त शक्तिम न सरल परमात्मा बन गया उनके आत्मामें जो अनन्तयुग प्रकट हुए हैं वे अब सदा प्रकट रहेंगे, उनमें अब कभी कमी न हो सकेगी । तो यों प्रभु अनन्त चतुर्पथमय हैं, किन्तु

उनमें अभी ४ अधातिया कर्म मौजूद हैं वेदनीय, प्रायु, नाम और गोत्र। तो गोत्रकर्म के उदयसे ये संहारी जीव प्रायः ऊंचनीच कुलमें रहते हैं, पर ये भगवान् तो उच्चकुलमें ही रहते हैं गोत्रकर्मका फल अरहंत भगवानके चर रहा है। नामकर्मका फल भी चल रहा है क्योंकि शरीरकी स्थिति है। अंगोपांग आकार आदिक सब चल रहे हैं आयुकपे आदिक का भी फल चल रहा है जिससे कि वे मनुष्यभवते बरोबर बने हुए हैं और वेदनीय का फल नहीं चल रहा है। उदयमें तो आ रहे हैं पर वे निष्फल होकर खिर जाते हैं। यह अतिशय प्रभुमें प्रकट हुआ है। इससे अधातिया कर्मोंना विपाक जल रहा है पर वेदनीय फल देनेमें सर्वथ इस कारण नहीं है कि वेदनीयमें फल देनेकी शक्ति मोहनीयके बलपर ही हो पाती है। अगर मोह ही इष्ट अनिष्टकी बुद्धि हो तां वह वेदनीय अपना फल दे, तो मोहनीयके न होनेसे वेदनीय अपना फल देनेमें असमर्थ रहता है। तो वेदनीय समर्थ नहीं रहता है इसलिए असाता वेदनीय अपना कार्य नहीं कर सकता।

दृष्टान्तपूर्वक विकलसामर्थ्य वेदनीयमें लाघा न दे सकनेकी सिद्धि— जिसमें सामर्थ्य पूर्ण हो ऐसो ही असाता वेदनीय अपना कार्य कर सकता है। और यहां प्रभुमें जो वेदनीयकर्म मौजूद है उसकी सामर्थ्य नहीं रही क्योंकि मोहनीय कर्मका नाश हो गया। जैसे दृष्टान्त ले लीजिए कोई सेना यदि कहीं लड़ रही है और उस लड़ाईमें सेनानायक भारा गया तो फिर सैनिकोंमें लड़ने की सामर्थ्य नहीं रहती है इसी प्रकार मोहनीयकर्मके नष्ट होनेपर भगवानमें अधातिजा कर्मोंका सामर्थ्य नहीं रहा। जो अभी ३ अधातियाकर्म फल दे रहे हैं वे भी न कुछ जैसे हो गए तो मोहनीय कर्मके नष्ट होने से कोई भी कर्म अपना फल देनेमें समर्थ न रहा। जिन कर्मोंका फल रह गया वे पुद्गाल विषयकी हैं, उनका जीवमें कुछ भी भार नहीं होता, जैसे मंत्रसे किसी विषेली चीचको निविष कर दिया जाय तो मत्रवादी उस मंत्रके बनसे उस चीजको खा भी रहा है, पर वह मूर्छित नहीं होता विषका उपपर कुछ असर नहीं रहता क्योंकि उस मत्रवादीने उस विषका सामर्थ्यको मंदिरारा खत्म कर दिया है ठीक इसी प्रकार असाता वेदनीयका उदय चल रहा है पर मोहनीयके न होने पर उस असातामें सामर्थ्य न रही अतएव वह असाता अपना फल देनेमें समर्थ नहीं होपाता क्योंकि कार्य तो योग्य सासग्रीसे ही होता है।

मोह त्रिना वेदनीयका फल न होनेके परिज्ञानसे प्राप्तव्य शिक्षा— वेदनीयको चाहिये मोहनीयकी सहायता तब उसका कार्य हो सकता है। इससे हम भी यही शिक्षा लें कि समस्त प्रकारके दुःख सुख मोह होने न होनेपर निर्भर हैं। जिसे जितना अधिक मोह है उसे उतना ही अधिक दुःख है। चाहे कोई बड़ा धनिक बन जाय विद्वान् बन जाय, नेता बन जाय, बड़ा यशस्वी भी हो जाय पर यदि उसमें मोह है तो उसके फलमें उसे सर्वत्र दुःख ही दुःख प्राप्त होता रहेगा। मोह ज्यों ज्यों क्षीण होता जायगा त्यों त्यों दुःखकी मात्रामें कभी आती जायगी। यहां इष्टवियोग प्रायः सभीको

होता है क्योंकि मोहकी गंदगी सभीमें कुछ लगी है, पर जरा सोचो तो सही कि जिन जिनका भा संयोग हुआ है उनका यदि वियोग नहीं होगा तो फिर वे सभी जीव इस घरती पर समायेंगे कैसे ? तो वियोग बिछोह तो सभीका होना ही है। अब जिसके जितना अधिक मोह होगा उसे जितना ही अधिक दुःखी होना पड़ेगा। कहीं ऐसा नहीं है कि पुत्र मरे तो इतना दुःख होगा और स्त्री येरे तो इतना दुःख होगा। और जिससे भी अधिक मोह होगा उसके वियोगमें अधिक दुःख प्राप्त होगा, और जिससे मोहकी मात्रामें कमी होगी उसमें दुःखकी भी मात्रामें कमी रहेगी। इन बाहरी चीजों के संयोग वियोगसे दुःखका कोई माप नहीं है। यदि हम शान्त और सुखी रहना चाहते हैं तो हमें अपने जीवनमें विशुद्ध ज्ञानके धर्मके अर्जन का प्रयास करना चाहिये।

आत्महितकी वर्तमान स्ववशता—ज्ञानार्जनका सुख शान्तिका भाग अपने वश का है पर जिन जिन कार्योंमें इतने क्षोभ मचाये जाए हैं वे कार्य अपने-वशके नहीं हैं। आज सभी लोग धनवैभवके पीछे बड़ी होड़ अचाहिरहे हैं पर इस धनवैभवका आना क्या अपने वशकी बात है और आज जिनके पास जो धन है वह उनके पिछले भवोंमें किए गये शुभ कर्मोंका फल है आजके पूरुषार्थकी बात नहीं है यह तो आपकी पूर्वकृत करनोका शरणार्थ है। यह बात सम्भव है कि यदि आप सम्पदाके पीछे दौड़ लगायें तो सम्पदा आपसे दूर होती जाय और यदि सम्पदासे आप उपेक्षाका भाव रखें, उससे मूर्छाका परिणाम न रखें तो कहो सम्पदा आपके निकट आती जाय। तो किसीभी चीजके अनुरागमें आशक्तिमें मोहमें लाभ नहीं है बल्कि उनसे विरक्त रहनेमें लाभ है। जो सम्बद्धित चक्रवर्ती हुए हैं, जिनमें भरतका नाम मुख्यरूपसे लिया जाता है वे बहुत बड़ी सम्भतिके बीच रहकर भी पूर्ण विरक्त थे। तो उचित होना चाहिये अपने स्वरूपके संपर्कनेके लिए अपने ज्ञानके अर्जनके लिए बाहरी चीजोंके पीछे दौड़ लगानेसे तो कुछ भी लाभ न प्राप्त होगा।

नियमितता और संतुष्टिसे जीवनमें शान्ति—अभी ही निकटकालमें अनेक लोग ऐसे हो चुके हैं जिसका यह नियम था कि हम प्रतिदिन इतनेका ही सामान बेचकर, इतना ही लाभ लेकर, इतना ही खर्च करके अपना गुजारा चला ऊंगा। अपने जीवनका अधिकसे अधिक समय धर्मधर्मानमें बिताऊंगा। आज तो खर्च जमाना ही बदल गया। महंगाईका जमाना है, लोगोंका इस तरहका काम करना जरा मुश्किलसा हो गया है, लेकिन कभी ऐसा जमाना था जब कि एक रुपयेका १ मन गेहूं मिलता था, एक रुपयेका ४ सेर धी मिलता था। ऐसे सस्ते जमानेकी बात है कि आगरामें पंडित बारासोदाम जी थे, उनका यह नियम था कि मैं प्रतिदिन १) का ही मुनाफा करके दुकान बन्द कर दूँगा। जैसे १६ पगड़ी बेचूंगा, प्रतिपगड़ी १ आना लाभ न गा। यों १) प्रतिदिन कमाऊंगा और फिर दुकान बन्द करके तीसरे पहर

तक मन्दिरमें रहैगा और अपना अधिक समय धर्मध्यानमें बिताऊंगा। आखिर इस बातकी उनकी बड़ी प्रसिद्धि हो गई थी। राजाने भी जब बनारसीदासका ऐसा हाल सुना तो उसकी परीक्षा लेनेका विचार किया। एक दिन अपने ३२ सिंहाहियोंको यह आदेश दिया कि बनारसीदासके यहांसे ३२ पगड़ी तुम सब ले आओ और यदि आज ही न लावेंगे तो तुम सबको कठोर दण्ड दिया जायगा। आखिर वे सभी सिंहाही बनारसीदासके यही पगड़ी लेने गये। पगड़ी जब तक द बिन चुकी थी तो पगड़ीं तो सबको दे दी पर लाभ प्रतिपगड़ी एक एक पैसा लिया। बादमें राजाने जांज की तो उसके विषयमें जो प्रसिद्धि थी वह सही निकली। आजके जमानेमें यदि ऐसी बात रखी जाय कि भाई ! धन कमाते हो, पर थोड़ासा समय तिकालकर मन्दिरमें आकर स्वाध्याय, पूजा पाठ आदि तो कर लिया करो। तो ऐसा करनेमें किसीका मन ही नहीं लगता। और चाहे गण्यमें सारा समय बितावें, बेकारके रागदेषादिकके कार्योंमें अपना समय चाहे गवां दें, पर आत्मसाधनाके कार्योंमें कुछ भी समय नहीं देना चाहते। यही कारण है कि आज सभी लोग दुखी नजर आ रहे हैं।

ज्ञान और विरक्तिसे क्लेशमुक्ति—ये जिनने भी दुःख हैं सब रागद्वेष मोहादिक विकार भावोपर निर्भर हैं। यदि समस्त दुःखोंसे छुटकारा प्राप्त करना है तो ज्ञानार्जन करनेका प्रयत्न करना चाहिए। इन पाथे हुए समागमोंमें प्रीति करना योग्य नहीं, ये कोई भी सभागम सदा न रहेंगे, सबका विक्षोह अवश्य होगा। इन छोटे छोटे बच्चे लोगोंको भी जो समागम प्राप्त है उनको भी समागमोंका विक्षोह उनके जीवन कालमें ही हो सकता है। यह जीवन बहुत थोड़ा है, इस अनन्तानन्त कालके सामने ये १००-५० वर्ष कुछ भी तो गिनती नहीं रखते। इतनी सी जिन्दगीको यदि मोह ममता में ही बिता दिया, उसीमें अपना भौज भाना तो इस सारे जीवनके मोजकी कसर वियोगके समय १ ही घंटेमें निकल जायगी। सिद्धान्तमें बताया गया है कि एक क्षण का भी तौब्र मोह हो तो उससे ७० कोड़ा कोड़ी सागर तककी स्थितिके कर्म बंध जाते हैं। तब फिर अपने आपको सावधान रखना बड़ा आवश्यक है। अपने आपको सावधान न रखना बड़ा धातक है। अगर आपमें ऐसी योग्यता बनायें कि सबके बीच रहकर भी अलिप्त रहें। ज्यों जलमें मिश्व कमल है, उस तरहसे रहें। जैसे कमल जलमें ही पैदा होता, जलसे ही उसका जीवन चलता पर जलसे वह अतिरिक्त है तभी वह जिन्दा रहता है। अगर जलमें ही आ पड़े वह कमल तो सड़ जागगा। ठीक इसी तरह हम आप न जिसमागमोंमें उत्पन्न हुए वहीं रह रहे। उन्हींके बीच पल पुस रहे फिर भी उनसे दूर रहेंगे तो कमलकी तरह खिले और प्रसन्न रहेंगे और यदि उन समागमोंमें लगेंगे तो जलपतित कमलकी तरह सड़ जायेंगे, बरबाद हो जायेंगे।

प्रभुकी परमोपेक्षाका बाह्य रूप—ये प्रभु सर्वज्ञ परमात्मा हुए जिनकी उशसनामें बड़े बड़े योगीश्वर रत रहा करते हैं उन्होंने भी क्या किया ? उन्होंने भेद

विज्ञान किया, समस्त परकी उपेक्षा की, अपने विशुद्ध ज्ञानप्रकाशको प्रकट किया, उत्कृष्ट पद प्राप्त किया। तो उन अरहंत भगवानने समस्त पर पदार्थोंकी पूर्ण उपेक्षा किया, तभी तो ऐसा समवशरण मिलता है कि बड़े मूल्यवान रत्न हीरा जवाहिरात आदिकसे उजे सजाये बड़ी बड़ी शोभाओंसे परिपूर्ण समयशरणके द्वीचमें वे भगवान विराजे हैं गंधकुटीपर कमलपर लेकिन वे उससे ४ अंगुल ऊंचे विराजे हैं। इस लक्ष्मी का मन नहीं भरा। इस लक्ष्मीने बहुत चाहा कि मैं भगवानका रूपर्ण करके अपनेको सुभग बनालूँ पर हुआ क्या कि ज्यों ज्यों यह लक्ष्मी भगवानके निकट आती गई त्यों त्यों भगवान छन्तरीक्ष होते गये। तब लक्ष्मीने क्या किया कि जब तो मैं छू ही लूँगी भगवानको। तो तीन छत्रोंके रूपमें वह लक्ष्मी ऊपरसे गिरकर भगवानको छूना चाहती है, किर भी भगवानको छू न सकी।

आत्मजागृतके ज्ञानजागृतिमें अन्यकी अबाधकता—भैया ! सब बातें ज्ञानपर निर्भर हैं। बच्चेको गोदमें लेकर खिलाते हुए भी यह ज्ञान जगे कि यह भी कोई एक जीव है, कमशीरी और जीवका पिण्ड है, मुझसे भिन्न है, जैसे जगतके और सब जीव हैं वैसा ही यह भी है, मैं इससे निराला था निराला हूँ और निराला ही रहूँगा। ऐसा ज्ञान कोई जगाये तो कोई दूसरा इसमें बाधा डालता है क्या ? अरे बच्चेको गोदमें खिलाता हुआ भी उससे विरक्त रहा जा सकता है। बातसे लोग हो ऐसे होते हैं कि परदेशमें पढ़े हैं पर अपने स्त्री पुत्रोंका ध्यान बना रहता है—अरे न जाने उनका क्या हाल होगा ? न जाने दे क्या कर रहे होंगे ? आदि। तो सब जीव हैं सभीसे अत्यन्त भिन्न, पर उनमें राग आशक्ति मोह बराबर बनाये रहते हैं। तो मैं भविष्यमें किस तरहसे रहूँ बान्त या अग्नात यह सब अपने ज्ञान और अज्ञानपर निर्भर है। यदि हमारा ध्यान, हमारा उपयोग निर्विकार आत्मस्वरूपकी ओर लग रहा है, उसका दर्शन अनेक बार होता है, उसकी धुनि बनी है तो हमें समझना चाहिये कि हम बहुत सुभवितव्य बाले हैं और यदि बाह्यमें राग ही चल रहा है तो समझो कि इसके फलमें हमें विडम्बनायें और विपत्तियाँ ही प्राप्त होंगी।

स्वप्नसम यायाकी असारता—किसीको जब स्वप्न आता है, स्वप्नमें वह बड़े बड़े बैंधवके बीच भी अपनेको रहता हुआ देखता है तो जब तक वह स्वप्न देखता है, जब तक उसे सारी बातें सत्य प्रतीत होती रहती हैं। मैं ऐसे बैंधव बाला हूँ, मेरी इतनी इज्जत है आदिक सभी बातें उसे सत्य दिखती हैं। कोई स्वप्नमें ही यदि सम्भान कर रहा है तो स्वप्न देखने वाला खुश होता है और यदि कोई अपमान करता है तो वह दुखी होता है। ये सारी बातें स्वप्नमें बिल्कुल सही दिखती हैं। पर क्या वह कुछ सही है ? अरे वह सब झूठ है। तो वह तो केवल दो चार दस मिनटका स्वप्न है जिसमें सब बातें सही प्रतीत होती हैं, यहां पह १०-२०-५० वर्षके जीवनका जो मौह

की नींदका स्वप्न है वह भी बिल्कुल सब दीखता है—यही तो मेरा वैभव है, यही तो मेरा वैभव है, यही तो मेरे परिजन हैं, यही तो मेरा सब कुछ है आदि। पर ये सब बातें क्या वास्तवमें सब हैं? अरे! ये सब जीतें भूठ हैं। क्योंकि जिस प्रकार स्वप्न देखने द्वाला जब जगता है तो उसे वहां स्वप्नमें दिखने वाली कोई भी जीच वहाँ नहीं दिलती तो समझ जाता है कि अरे वह सब भूठ था, इसी प्रकार मोह निद्राके भङ्ग होनेपर अथीत ज्ञान नेत्रके खुलनेपर यहाँकी मोहकी निद्रामें दिखने वाली बातें बिल्कुल भूठ प्रतीत होने लगती हैं।

ज्ञानचक्षुके उन्मीलनका महत्व—ये सब बातें अपने ज्ञानपर निर्भर हैं। केवल बचन बोल लेनेसे ज्ञानकी आंख नहीं खुलती। बचन तो जैसे चाहे थोल लिए जा सकते हैं, बचन तो सोने वाला पुरुष भी बड़बड़ा लेता है पर जब तक अपने सहज ज्ञान स्वरूपका अनुभव नहीं जगता तब तक ज्ञानचक्षु नहीं खुलते। जब इस प्रकारका ज्ञान-चक्षु खुल जाता है तो फिर मोह निद्रामें दिखायी देने वाले सब भूठें प्रतीत होने लगते हैं। अरे जिसे मैं अपना समझ रहा था, जिनके पीछे मैं बड़े बड़े पापकार्य भी किया करता था वे तो मेरे कुछ भी नहीं हैं। मैं व्यर्थ ही उन्हें उपना समझकर उनके पीछे हो रहा था। तो उस ज्ञान तत्वके जगनेपर वे सांरी बातें स्वप्नवत् भूठ प्रतीत होने लगती हैं। ऐसा अपना तत्वज्ञान बना रहे तो इसमें कोई कष्टकी बात नहीं है। अरे मानो कुछ धन घट गया, किसी इष्टका वियोग हो गया, किसीने कहना न माना, तो इसमें कोनसे कष्टकी बात है। अरे उसे समझलो कि वह तो परमें परकी ही परकी जैसी परिणति हुई। मैं तो इन सबसे निराला ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हूँ। बस इतनी जानकारी बना लेना इसी सत्य बातको मानकर रह जाना यही समस्त प्रकारके कष्टोंके मेटनेका एकमात्र उपाय है। तो उन प्रभुने भी अपने दुःखोंके लिए इसी प्रकारका यथार्थ ज्ञान बनाया था बस उसी सत्य बासको मानकर उसी रूपमें अटलक्ष्मपेर रह गये थे जिन प्रभुकी उपासना में बड़े बड़े योगीन्द्र रथा करते हैं।

शुभ्लध्यानके बलसे धातिया कर्मोंका विनाश होनेके कारण वेदनीयकी सामर्थ्यहीनता— समस्त क्लेशोंसे रहित अपने आपके आत्माके स्वभावका उपशोग रख कर जिसने स्वभावको विकास कर लिया है ऐसा सकल परमात्मा प्रभुके किसी भी प्रकार की वेदना नहीं होती। उनमें यद्यपि चार अधातियाकर्म शेष रह गये वेदनीय आद्यु नाम और गोत्र। उनमें चूंकि वेदनीय कर्म जीव विपाकी है इस कारण उसका सम्बन्ध मोहनीयकर्म से है। यदि मोहनीयकर्मका उदय है तो वेदनीय अपना फल दे सकता है, पर भगवानके मोहनीयकर्मका अमाव हो चुका, क्योंकि क्षणकश्चेष्णिमें उन्होंने शुक्लध्यान रूपी प्रचण्ड अग्निके बलसे धातियाकर्मोंको जला डाला।

आत्मध्यानका अप्रमत्त साधुवोंमें भी अभाव— ध्यान १६ प्रकारके होते हैं छ़आत्मध्यान ४ रौद्रध्यान ४ धर्मध्यान और ४ शुक्लध्यान। चार आत्मध्यानोंमें एक है

इष्टवियोगज—किसी इष्टका वियोग हो जाय तो उसके मेल मिलाय वचनव्यवहार आदिके लिए जो चिन्तन चलता है उसे इष्टवियोगज आरंध्यान कहते हैं यह दुःखमयी ध्यान है। दूसरा है अनिष्टसंयोगज किसी भी अनिष्ट पदार्थका संयोग ही जाय तो उसे हटानेके लिए जो ध्यान बनता है उसे अनिष्ट संयोगज आरंध्यान कहते हैं। यह भी दुःखमयी ध्यान है। तीसरा है वेदनाप्रभव शरीरमें कोई वेदना जगे, उसमें दुःख मने, उसके सम्बन्धमें कल्पनायें करे कि न जाने इस वेदनासे मेरा क्या हाल होगा। ऐसा चिन्तन करना सां वेदनाप्रभवध्यान है। यह भी दुःखमयी ध्यान है। चौथा है—निदान, निदान का ग्रथ है आकाशें रखना। इस भवमें मुझे यों मिले यों मिले और परभवमें मुझे यों मिले यों मिले आदि चिन्तन करना सो निदान नामक आरंध्यान है। ये चार तो दुःख मयी ध्यान हैं। ये तो अप्रमत्तत साधुओंके भी नहीं होते।

रौद्रध्यानका प्रमत्तविरत साधुवोंमें भी अभाव—अब रौद्रध्यान की बात सुनो रौद्रध्यान भी ४ प्रकारके हैं—हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द और विषयसंरक्षण। हिंसानन्द—हिंसामें आनन्द माने हिंसा करने वालेकी प्रशासा करे, उसे देखकर खुश हो तो यह हिंसानन्द रौद्रध्यान है। मृषानन्द—झूठ बोलनेमें व किसी को घोला देने आदिमें आनन्द मानना सो मृषानन्द नामक रौद्रध्यान है। चौर्यानन्द—किसीकी चोरी को चुरानेमें व किसीकी चोरीकी जानकारी होने आदिपर खुश होनेमें जो भी ध्यान बनता है वह चौर्यानन्द नामक रौद्रध्यान है। विषयसंरक्षणानन्द—विषयोंके साधनोंको पाकर उनमें यौज मानने सम्बन्धी जो ध्यान बनते हैं वे विषयसंरक्षणानन्द नामक रौद्रध्यान हैं, अब अपनी यह परीक्षा कर लेना चाहिये कि हम दुःख देने वाले ध्यानोंमें कितना रहते हैं, और इस रौद्रध्यानमें कितना रहते हैं और धर्मध्यानमें कितना रहते हैं विषयसंरक्षणानन्द नामक रौद्रध्यानका बहुत बड़ा विस्तार है। परिच्छहमें लालसा रखना, धन जोड़नेकी इच्छा रखना, धन देखकर खुश होना, बैलेन्स देखकर खुश होना, माल देखकर खुश होना, स्पर्शन इन्द्रियके माधनोंको देखकर खुश होना, अनेक प्रकार के रसीले स्वदिष्ट भोजन आदिक को पाकर खुश होना, आदिक ये सब विषयसंरक्षण नन्द नामक रौद्रध्यान हैं। रौद्रध्यान तो प्रमत्तविरत साधुके भी नहीं होते। अब हम आप सभी लोग इस बातपर विचार करें कि हमारा २४ घंटेमें कितना समय हन आरं और रौद्रध्यानोंमें व्यतीत होता है। विचार करनेपर यही पायेंगे कि थोड़े से धर्मध्यान के अतिरिक्त हमारा सारा समय आरंध्यान और रौद्रध्यानमें व्यतीत होता है।

३२३। १८५

आज्ञाविचय, अपायविचय व विपाकविचय, धर्मध्यान—अब धर्मध्यान की बात देखिये ! धर्मध्यान भी चार तरहके हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। आज्ञाविचय—भगवानकी आज्ञाको प्रधानता देते हुए, उसके प्रति श्रद्धा रखते हुए जो भी ध्यान बनते हैं वे आज्ञाविचयनामक धर्मध्यान हैं। अपायविचय—भेरे ये रागद्वेष मोहादिक कैसे दूर हों, भेरेमें जो ये गंदगियां भर गई

है उनको किस प्रकार से दूर करें, इस प्रकार का जो उपाय चिन्तन किया जाता है उसे उपायविचय या अपायविचयनामक धर्मद्वयान कहते हैं। विषाकविचय—कर्मोंके फलके सम्बन्धमें विचारना—ये कर्म कैसे फल देते हैं इस जीवको, कर्मोंके फल देतो बड़े पुरुष जैसे श्रो रामचन्द्रजी भगवान्, जो कि माँगीतुझी पर्वतसे निर्वाण पधारे हैं, उनको कितने कितने प्रकारके संकट सहने पड़े। बड़ा आदमी कहते किसे हैं? जो बड़े बड़े संकटोंके बीचसे गुजरे, फिर भी धीर रहे वह यही बड़े पुरुषका लक्षण है। नड़े दुरुराणोंको भी आप देख डालिये, उनमें भी करीब करीब यही बात मिलेगी। जो भी लोग महापुरुष माने गये वे प्रायः इसी बातपर माने गये।

कर्मविपाकका एक उदाहरणमें चिन्तन—श्रीराम भगवानका जीवनचरित्र देखिये! क्लृप्तमें ही अपने माँ-बापसे विछुड़कर धर्मात्मा राजा जनकके राज्यमें साधियोंगेर उपद्रव करने वाले स्लेञ्च राजाओंसे युद्ध करनेमें रहे उस समयके कष्ट देखिये! सीतास्यम्बवरकै समयके क्षम्भु देखिये! राज्याभिषेक होनेको था, पर क्या से क्या घटना घट जाती है, रामचन्द्रजीको जङ्गल जाना पड़ता है उस समयके संकट देखिये! यद्यपि कैकेईने रामचन्द्रजीको जङ्गल नहीं भेजा था, उसने तो जब यह बात देखी कि राजा दशरथ भी विरक्त हो रहे हैं, हमारा पुत्र भरत भी विरक्त हो रहा है, तो अपने पुत्रको विरक्त न होने देने अर्थात् अरने पास घर पर ही रखनेके विचारसे अपने पूर्वमें पाये गये बरदानको जो कि अभी राजा दशरथके बचन भण्डारमें रखा था माँग लिया। उस बचवामें कैकेईने अपने पुत्र भरतको राजगद्वी माँगा था, बस बचनके माँगनेका उद्देश्य उस संकेहा यही था कि पति दशरथ तो विरक्त होते हैं वे मानवों ही नहीं, पर मैरा पुत्र भरत तो न विरक्त हो यदि मेरा पुत्र भरत घरपर हो रहेगा तो मैं पुत्र विहीन तो न कहलाऊंगी। केवल यह भाव था कैकेईका भरतको राजगद्वीका वरदान माँगनेका लेकिन रामचन्द्रजीने यह विचारकर जंगल जाना चाहा था कि लोगों की दृष्टि हमारे ऊपर है हमारे भाई भरतका कुछ भी प्रताप न रहेगा तो यही सोचकर वह जंगल चले गये थे। तो रामचन्द्रजीके उस समयके संकट देखिये, बादमें जब लंगलमें रहे रामचन्द्र जी, तो सीताहरण आदिके संकट देखिये, रावणसे सीताको जीतनेमें युद्ध करना पड़ा उसका मंकट देखिये। खैर किसी तरहसे सीताको लेकर अयोध्या पहुँचे तो कुठ वर्ष वर्षतोत होनेके बाद वहाँ किए एक संकट सामने आ गया घोबिनकी रथीने कहूँ दिया था कि यदि मैं दूसरेके घर रही तो क्या हज़ा, सीताजी भी तो ३ माह तक रावणके घर रही, लो फिर सीताजीको जगलमें छोड़ा, उस समय के संकट देखिये, सीताजीके उस समय गम्भीर था। लवकुश नामके दो पुत्र हुए फिर कुछ वर्षों बाद मेलमिलापके प्रसंगमें लवकुशको रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीसे युद्ध करना पड़ा उस समयके संकट देखिये सीताजीका। अग्नि परीक्षाके समयके संकट देखिये, देवोंने जब राम लक्ष्मणके स्नेहकी परीक्षाके लिए एक ढोंग रक्खा था महिलायें रोती हुई दिलाई, हाथ राम हाथ रामका शब्द बोलती रही व लक्ष्मणसे कहा दिया था कि रामचन्द्र तो

मर गए सो उनके वियोगने लक्षण मरगये । श्रीराम मरे नहीं थे बल्कि देवोंने वैसा ही ढोग रख डाला था । अाखिर लक्षणको मरा हुआ जीनकर रामचन्द्रजी किस तरह से व्याकुल रहे उस समयके संकट देखिये । तो यद्यपि इतने प्रकारके संकट उनके ऊपर आये । तो ये सारे संकट उनपर कब तक आते रहे जब तक उन्होंने सतीजे परिष्ठेंका त्याग नहीं किया । जब वह निर्यन्त्र साधु हुए उस समय भी सीताका जीव जो कि १६ वें स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ था वह स्वयं रामको डिगानेके लिए आया था । सीताके उस जीवने अपना सुन्दर स्त्री ना रुग्ण बनाया, बड़े हाव भाव दिखाये रावण मिरके केव पकड़कर सीताको घसीट रहा है, दृश्य दिखाये । पर रामचन्द्रजी तो उस समय पूर्ण विरक्त वे इस कारण उनका मन रंग भी न डिगा सीताका जीव इसलिए उन्हें डिगान आया था कि यह अभी कुछ समय तक सँसारमें ही बने रहें और बादमें हम होनें एक साथ मोक्ष जायें ।

विपाकविचय धर्मध्यानसे ग्रात्मशिक्षा - तो मूलमें यह बात चल रही थी कि ये कर्म जीवको किस किय प्रकारसे फल दिया करते हैं । तो कर्मोंके फलका इस प्रकारका चिन्तन करना । सो विपाक विचयनामक धर्मध्यान है बहुत से लोग छिपकर पाप करते हैं । ठीक है कुछ पुण्यका उदय है इसकारण वे पाप यहां छिप भी सकते हैं, जैसा का तैसा पुण्योदय बराबर कुछ ही काल बना रह सकता है पर वे पापकर्म अपना फल अवश्य देकर रहते हैं । इस प्रकारका चिन्तन करना सो विपाकविचय नामक धर्म ध्यान है । इस प्रकारका चिन्तन करके अपने आपको सावधान रखना चाहिये । यदि थोड़ा बहुत बैमव भी प्राप्त हो रहा है विसा करके अथवा अन्याय करके, तो उसे न करे । उस लाभके लोभको छोड़ दें और अपनेको एक ऐसे न्यायपूर्ण जीवनमें ढालें कि दोनों लोकमें प्रकाश और आनन्दमें रहें । यही तो इस विपाकविचय धर्मध्यान का लाभ है ।

संस्थानविचय धर्मध्यान और उनका महत्त्व - संस्थानविचयधर्मध्यान - अह ऐसा ध्यान है कि जिमें तीन लोक और तीन कालकी रचना उभयोगमें बनी रहे, इसका साधारण स्वरूप यह है कि यह ध्यान मुख्य रूपसे मुनियोंके हो पाता है । वैसे चारों धर्मध्यान अविरत सम्यग्टपृष्ठ वतुर्थ गुणस्थानसे होता है, पर मुख्यरूपसे संस्थान विचय-धर्मध्यान मुनि कर पाते हैं । अर्थात् ऐसा ध्यान बनाये रखना कि यह संतार बहुत विशाल है, ३४३ घनराजू प्रमाण हैं । मध्यलोक इतना बड़ा है कि जहाँ असंख्यत द्वीप समुद्र हैं । ऐसी जब लोकके विस्तारकी बात चित्तमें रहती है तो वहाँ फिर राग करनेका अवकाश नहीं रहता । लोग कीर्तिके लिए, रागके लिए जो इतना अधिक चलते हैं उनका कारण यही है कि उनके चित्तमें इतनी भर बसी है कि यह हमारा नगर है, यह इतना हमारे पासका क्षेत्र है और यह इतनी सारी दुनिया है, ये इतने लोग हैं, इनसे ही हमारा समर्पक है, इनसे ही हमारा सब कुछ व्यवहार है, तो

जिनसे अपन व्यवहार चलता है उन्हीसे रागद्वेषकी बातें चलती हैं लेकिन जहाँ चित्त में यह बात नैठी हो कि श्रेरे यह कितनी बड़ी दुनिया है, यह तो रथयंभूरमण समुद्रके पानीके सामने एक बूँद बराबर भी नहीं है। स्वयंभूरमण समुद्रकी बूँदकी तरह गिनती बन जाय, पर इतनी परिचित दुनिया इतने बड़े लोकके सामने कुछ भी तो गिनती नहीं रखता, वहाँ यह बात चित्तमें बस जाती है कि श्रेरे यहाँ किसलिए पाप करना, किसलिए विकल्प करना, किसलिए कीर्ति चाहना।

संस्थानविचय धर्मध्यानमें आत्मशोधन—संस्थानविचय धर्मध्यानमें यह उपयोग रहता है कि इस संसारमें न जाने। कितनी कितनी प्रकारकी पर्यायें हैं, बाना प्रकारके देह हैं, नाना प्रकारके उनके परिणाम हैं तो ऐसी बातोंका ज्ञान होनेसे फिर इन पर्यायोंसे सम्पर्क रखनेकी इच्छा नहीं रहती। संस्थानविचय धर्मध्यानका बास्तविक महस्त क्या है? जहाँ यह जाना कि समय तो अनन्तानन्त है। इस काल कीं न कभी आदि हुई है, न कभी धन्त होगा। वह समय तो ०दा रहेगा। इतने अनन्त समयके सामने ये १००-५० वर्ष कुछ गिनती भी रखते हैं क्या? इन्हे छोटेसे जीवनमें यदि विषय कथायोंमें भी रमकर समयको छो दिया तो जन्म मरण करते रहनेकी परम्परा बढ़ती चली जायगी। इसलिए यहाँ सावधान रहना और शाश्वत निज ज्ञानस्वभावकी प्रनीति रखना कि यह ही मैं हूँ, इतना ही मेरा वैभव है, यही मेरा वैभव है यही मेरा लोक है, इस प्रकारका उन्हें बल मिलता है इस संस्थान विचय धर्म ध्यान से। फिर उसके और भी रूप हैं पिण्डत्य, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत आदिक तो धर्मध्यानोंमें यह संस्थानविचय धर्मध्यान उत्कृष्ट है।

शुक्लध्यानका प्रभाव—अब शुक्लध्यानकी बात सुनिये—शुक्लध्यान ४ प्रकारके होते हैं जिनमें पहिला है—पृथक्त्व वितरक वीचार यह पृथक्त्व वितरक वीचार उच्च श्रेणी के मुनियोंके होता है। सप्तम गुण स्थान तक नहीं होता। इसके बाद दो क्षेणिणां होती हैं। उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि। क्षपक श्रेणीमें कर्मोंका क्षय करके वह सुनि भगवान बनता है और जो मुनि उपशम श्रेणीमें चढ़ता है वह ११ वें गुणस्थानसे नीचे घिर जाता है, बादमें जब कभी वह अपनेको सम्हालता है तो फिर क्षपकश्रेणीसे चढ़ कर वह केवली भगवान बनता है, शुक्लका अर्थ है स्वच्छ केवल एक ज्ञानका ही स्वच्छ प्रकाश चल रहा है उसमें जो कुछ भी ध्यान बन रहे हैं वे सब शुक्लध्यान हैं। तो इस प्रथम शुक्लध्यानमें श्रभी ज्ञात्यकी स्थिरतामें कमज़ोरी है। यदि किसी चीज़का विचार करने वैठ जायें और विचार करते करते उसी विचारपर एक दम ढिक जायें ऐसा वे कभी नहीं कर पायें, कभी पुद्गलोंका विचार बनता है तो कभी जीवोंका। मगर बुद्धि पूर्वक रागद्वेष नहीं है तो ये ध्यान बिना रागद्वेषके चलते हैं। फिर आगे बढ़कर दूसरा शुक्लध्यान होता है एकत्व वितरक अवीचार। जिस एक वस्तुका निन्तन कर रहे हैं उन्हीसे करेंगे। उसी का निन्तन करते रहेंगे, जिस योगसे जिन शब्दोंसे निन्तन कर रहे हैं उन्हीसे करेंगे।

ऐसो ध्यान अन्तमु हुरे तक ही होता रहता उपके प्रतापसे केवल ज्ञान ही जाता है ।

मोहक्षयसे वेदनीयकी अफलता—यहाँ यह कह रहे हैं कि भगवानने शुक्ल ध्यानके बलसे मोहनीयका पहिले ही अभाव कर दिया है । तो मोहन रहनेपर वेदनीय कर्मका उदय अपना कार्य नहीं कर सकता । यदि मोहनीयके अभावमें वेदनीयका उदय कार्य करदे तब इसका अर्थ यह हुआ कि अरहत भगवानके परधात नामकर्मका भी उदय चलता है । देखिये परधात किसे कहते हैं । जिसके उदयमें ऐसी शक्ति हो कि दूसरेका भी घात कर सके । यदि भगवानके परधातका उदय है तो इसका अर्थ है कि भगवान किसीको मारेंगे भी ताड़ेगे भी यदि कहो कि मोहनीयके अभावमें ये कुछ काम नहीं कर पाते हैं तो मोहनीयके अभावमें वेदनीय भी काम नहीं कर पाता यह भी मान लेना चाहिये । मोहनीयके अभावमें यदि वेदनीयके उदयसे दुःख होने लगे तो परधात भी १३ वें गुणस्थान तक है तो उम भगवानके द्वारा भी वेदनीयके कार्यके सम्मन परका ताड़न पीड़न भी होने लगे ? यदि यह कहो कि भगवान तो परम दयालु है इस कारण परधातका उदय होनेपर भी वे दूसरे से ताड़ते नहीं हैं इसी कारण वे भगवान दूसरे के द्वारा भी नहीं ताड़े जाते । तो अनन्त सुख, अनन्त वीर्य होनेके कारण भगवानमें कोई धुधा ही नहीं है तो किर वहाँ कबलाहारका ही क्या प्रसंग है । किर यह क्यों नहीं मान लेते कि असाता वेदनीयका उदय होनेपर भी वे भगवान भोजन नहीं करते ।

प्रभुका अन्तर्वर्तन—प्रभुका काम क्या रह गया इस पर दृष्टि दें । कोई सिद्ध आत्माका अभेद ध्यान करके अरहत हो गये तो अरहत अवस्थामें अब वे क्या करते सिवाय जानन और आनन्दानुभवन करनेके । अलौकिक आत्मीय आनन्द भोगना और जानदैजन हार रहना, बस इतने ही काम उनमें पाये जाते हैं । यहाँ के लोग तो कलनामें अनेक काम करते हुए पाये जाते हैं इच्छर उधर देख रहे बातें भी कर रहे काम भी कर रहे पौज मान रहे परिष्प्रसे थककर विश्राम भी कर रहे हैं, इस प्रकार यहोंके संसारी जन अनेक काम करते हैं पर यहाँके लोगोंके ज्ञान और सुख निःशक्तिक हैं पर भगवानके ज्ञान और आनन्द असीम है और निरन्तर प्रतिसमय उनका यह ज्ञानानन्दका कार्य चलता रहता है लेकिन थकने का कार्य नहीं है । वही समस्त ज्ञान, आनन्द, निराकुलता उनके अनन्तकाल तक चलती रहती है । भगवान न तो दयावान है और न निर्दय है न उनके शुभभाव हैं न अशुभभाव है । दया और निर्दयता आदिके भाव मोहनीयके कार्य हैं । पर मोहनीयका जब अभाव हो गया तो भगवान के ये शुभ अशुभ भाव नहीं रहते । उन्हें करणादान, परम करणादान कहनाईयुक्त है उनकी परकी करणा यही है कि वे अपने आप अनन्त आनन्दमें रत रहा करते हैं और ज्ञानके द्वारा ज्ञाता दृष्टा रहा करते हैं इसे कहलो करणा । और उनकी करणा यही है कि जिनका ध्यान करके सम्यग्दृष्टि योगी भव्यजन अपने दुःखको टाल लेते हैं । यो निमित्त दृष्टिसे करणाको उपचार करलो पर भगवानमें न करणको बात है और

ज्ञान हक्साकी बात है।

प्रभुस्वरूपके परिचयसे आत्मशिक्षण—जो स्वरूप प्रभुका है उसको सुन करके हमें अपने मनमें क्या बात लेनी चाहिए ? देखिए ! विषय कषाय भोगनेमें चीज़ थकान रहती है, मनुष्य आकुलित रहता है। उस विषय कषायकी थकानको दो मिनट को भी तो दूर करें अर्थात् अन्तरज्ञमें इस प्रकारका ज्ञान जगायें कि बाहरी कोई चीज़ इस ज्ञानमें न रहे किसी भी चीजका विकल्प न रहे, ऐसा सोचकर कि मैं अपने आप को तकूं तो कि अपनमें मैं हूँ क्या ? ये जो नाना प्रकारकी परेशनियां हो रही हैं, विकल्प चल रहे हैं, किमी एक बातपर भी नहीं ठिक रहे हैं यह क्या विडम्बना है ! मैं वास्तवमें हूँ क्या, किस तरहका मेरा स्वरूप है बस भुक्ते यही जानना है, इसके ही जाननेका मत्याग्रह करले और जो अटपट विकल्प उठते हैं उनका असहयोग करदें अर्थात् उनको अपने दिलमें स्थान न दें। ऐसा सत्यका आग्रह करलें कि बस मुझे अब किसी भी प्रकारका विकल्प नहीं करना है, मैं तो विश्रामसे रहूँगा और प्रवने आपको ही अनुभवूँगा कि वास्तवमें मैं क्या हूँ ऐसा संकल्प करके विस्तव्य बैठें तो विदित होगा कि वास्तवमें मैं क्या हूँ और उसके विदित हो जानेपर फिर ये अनन्त दुख मिट जायेगे। तो ज्ञानरूप यह मैं अपने ज्ञानमें आऊं, उस समय जो अनुरूपत होती है उसके बाद फिर ये दुनियाकी सब चीजें काढ़ पाषाणकी तरह निश्चल दीखती हैं और इनमें रहने वाला जो जीव तत्त्व है वह भी निश्चल दीखता है। यह सब औपचारिक हो रहा है, यह सारी दुनिया मोहर्में अनुरक्त है यहां कुछ भी सार नहीं है। जो सारभूल तत्त्व है जो सबमें मौजूद है उसपर दृष्टि न होनेसे ये सब भटकनायें हो रही हैं। उसे विषय कषायोंके आवर्में सार प्रतीत नहीं होता। उस समयके लिए यह शंका न कर बैठें कि उनका जीवन तो फिर मौजरहित होगया और उन्हें तो आत्मीय आआनंद मिल रहा है।

लोकवैभवकी अरम्यता—आज जो आप सबको त्रिषयोंके साधन प्राप्त हैं वे सब तो पुण्योदयसे आते हैं। इनका आना आजके भावोंके आदीन बात नहीं है। कदाचित् आपने किसी चीजकी चाह की और वह चीज आपको प्राप्त हो गई तो आप समझ लेते हैं कि यह चीज हमारे आजके ही परिणामसे प्राप्त हुई, पर ऐसी बात नहीं है, वह तो आपका उदय ठीक चल रहा है, पूर्वभवमें आपके घर्मकार्य किया था, उससे जो पुण्यका बंध हुआ था उसके उदयसे आपको वह चीज प्राप्त हुई है। तो इस धन वैभवकी उपेक्षा करना चाहिए। आने दो आयगा आएके न चाहनेपर भी आयगा, रहेगा पर उस वैभवके रहनेपर अब इस सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुषको क्ता मौज रहा ? देखिये ! विचित्रता कि जब तक अज्ञान था, आशा करते थे तब तक तो मनमाना वैभव नहीं तिल रहा था, जब तक ज्ञान हुआ, सम्यग्दृष्टि हुए किसी वस्तुकी चाह न रही तब चक्री वर्गरहके उच्च पद प्राप्त हुए। सो जब चाह थी तब वस्तुकी प्राप्ति न हुई और जब चाह नहीं है तो वस्तुकी प्राप्ति हो रही है तो उस वस्तुकी प्राप्तिसे लाभ क्या ? यहांपर किसी भी वस्तुकी चाह न रहे तो इस लोकमें भी आनन्द है और

परलोकमें भी । अपने आपमें बसा हुआ जो परमात्म तत्त्व है जो अरहंतसिद्ध प्रभुके विकासके समान स्वभाव रखता है उसकी शरण मानें यह ही मात्र मेरा शरण है' यही प्रभु है, यही मेरे निकट रहे, तो इसके प्रतापसे तो सर्वसिद्धियाँ हैं पर बाह्य पदार्थोंकी आशासे, इनकी ममताओंसे आत्माको सिद्धि नहीं है ।

विमोह प्रभुके वेदनीयको निष्फल न माननेपर भंदराग साधुओंके वेदकी कार्यकारिताका प्रसङ्ग सकल परमात्मा अरहंत भगवानमें वेदनीय कर्मका उदय यद्यपि है तो भी मोहनीय कर्मका क्षय होनेसे वह फल नहीं दे सकता । वेदनीय कर्म मोहनीयकी अपेक्षा रखकर ही अपना कार्य करनेमें समर्थ है । यदि कर्मोंका उदय निरपेक्ष होकर कार्य उत्पन्न करने लगे तो तीन वेदोंका और कषायोंका उदय क्रमशः ६वे, १०वे गुणस्थान तक है । जब मोहकी अपेक्षा लिए बिना, अस्त्वाल्यानावरण कषायकी प्रेरणामें ही वेदनीय अपना कार्य करता है उसकी अपेक्षा लिए बिना फिर तो वेद भी उन साधुजनोंमें काम करने लगे और गृहस्थोंकी तरह उनमें भी विषय प्रसङ्ग प्रा जायेगे अथवा भूकुटी आदिक च गाना उनमें भी आ जायगा । देखिये ! साधुजन यदि आंखें मटकायें, मुँह टेढ़ा करें ऐसी प्रक्रिया करें तो वे प्रक्रियायें साधुके अशोग्य बतायी गई हैं । साधुके ऐसी समता होती है कि जिसके दर्शन करने मात्रसे लोग शान्तिका लाभ लें और वीतरागताका उपदेश ग्रहण करें । उदयसुन्दरका बहनोई ब्रजबाहुके विवाह होनेके ५-७ दिन ही बाद उदयसुन्दर अपनीं बहिनको लिवाने चला तो ब्रजबाहु भी स्त्रीके साथ हो गए अपनी स्वसुराल तक जानेके लिए । आजकल यदि कोई ऐसा काम करे तो शायद वह तो लोगोंकी निगाहसे गिर जायगा । आजकल भी यदि कोई ऐसा काम करे तो शायद वह तो लोगोंकी निगाहसे गिर जायगा । आज-कलकी बात तो पता नहीं पर अभी २०-३० वर्ष पहिले यदि इस प्रकारका काम कोई करता तो वह तो बड़ा बुरा समझा जाता । तो चले वे तीनों पुरुष, ब्रजबाहु, ब्रजबाहु की पत्नी और ब्रजबाहुका साला उदयसुन्दर । तो रास्तेमें जब एक जङ्गल पड़ा तो उन्हें एक मुनिराजके दर्शन हुए । मुनिराजकी मुख्यमुद्राको देखकर ब्रजबाहुका मोह गल गया । मुनिराज तो अपनी ध्यानकी मुद्रामें बैठे हुए थे पर मुनिराजकी उस शान्त मुद्रा को ही देखकर उस ब्रजबाहुका चित्त एकदम विरक्त हो गया । तो आप समझिये कि जिसका अन्तरङ्ग विशुद्ध है इस ही कारण जिसकी शांत मुद्रा देखकर भव्यजीव विरक्त होकर निर जाते हैं । इस प्रकरणमें यह कह रहे हैं कि यदि मोहके बिना अन्य प्रकृतियाँ कार्य करने लगें तो साधुजनोंमें चूंकि कषायोंका वेदका उदय तो है ही उनमें भी भूकुटी जलाने, आंखें मटकाने आदिकके ऐसे अवगुण आ सकते हैं, पर हीते नहीं कभी भी । दोषापत्ति दे रहे हैं और क्षपकश्रेणीपर वे कैसे चलेंगे ? और क्षपकश्रेणीका आरोहण किए बिना कर्मोंका क्षपण भी नहीं बन सकता है । इससे यह सीधा मानलो कि अरहंत भगवानमें न तो क्षुधाकी वेदना होती है और न उसका प्रतिकार करना पड़ता है, न

भोजन करना पड़ता है।

बलिष्ट आत्माके अशुभ प्रकृतियोंकी कार्यकारिताका अनवकाश—
अब यहां शाकाकार कह रहा है कि कर्मोंके उदय भी अर्थे और वे अरते कार्य न कर सकें तो किंव नाम आदिक भी अपना कार्य करने वाला नहीं रहा। अर्थात् प्रभुके देह तो है ना अर्भ! जब तक अरहत भगवानको सकल कर्मोंसे मुक्ति नहीं मिलती तब तक वे देहमें रहते हैं। चार अधिकारियोंका कर्म अभी शेष हैं तो वहां देह बना हुआ है, और नामकर्मके उदयसे देह रहता है तो कर्म जब वेदनीय निष्कर्ता हो गया तो नाम कर्म आदिकका कर्म भी निष्कर्ता हो जाय। तो समाधान देते हैं कि यह कहना असंगत है। जो कर्म शेष रह गई है अरहत भगवानमें उनमें कई प्रकृतियां तो शुभ हैं और कई अशुभ। तो शुभ प्रकृतियोंका सामर्थ्य खत्म नहीं होता। सो शुभ प्रकृतियां तो अपना कार्य कर रही हैं, अशुभ प्रकृतियां कार्य नहीं करती। जैसे एक दृष्टांत लो—
एक बलवान राजा जो अपने व्याय नोतिके मार्गपर चल रहा है अर्थात् दृष्टोंका निश्रह करना और सज्जनोंका पालन करना यह जिसने अपना व्याय बना लिया है ऐसे राजा ने आगर कोई देश प्राप्त कर लिया तो उस देशमें जो दुष्ट लोग होंगे वे जीवित रहकर भी अपना दृष्ट आचरण कर सकते वाले नहीं बन सकते, पर सज्जन लोग उनकी वृत्तिका तो प्रतिवन्ध नहीं। वे आपने कार्यके करने वाले होते हैं। इसी प्रकार अरहत भगवानने घातिया कर्मोंको जीता। अपने आत्मापर विजय प्राप्त की। अब जीवित याने उदित जो शुभ प्रकृतियां हैं वे अपना कार्य करती हैं किंतु अशुभ प्रकृतियां अपना कार्य नहीं करती।

अशुभ प्रकृतियोंकी कार्यकारिताके अनवकाशका कारण अशुभ प्रकृतियोंके अनुभाग रसकी निर्जीर्णता—शाकाकार पूछता है कि ऐसा कौनसों कारण है कि अब अरहत भगवानमें शुभ प्रकृतियोंका सामर्थ्य तो किसीसे रुद्ध नहीं होता और अशुभ प्रकृतियोंकी सामर्थ्य बिगड़ गई अर्थात् खोटी प्रकृतियां जो भी भगवान्में शेष रह गई वे तो फल नहीं देती और शुभ प्रकृतियां अपना कार्य करती हैं। उच्चर देते हैं कि अरहत भगवानने अशुभ प्रकृतियोंकी फलदान शक्तिका धात कर दिया है। अशुभ प्रकृतियोंकी फलदान शक्तियां फिर न होंगी। कर्णणानुपोगके शास्त्रोंमें स्पष्ट वरण है कि जब कभी कर्म निषेकोंका क्षय होता है और सक्रमण विवरण आदिक कर्मोंमें चलते हैं उस समय अनुभागका क्षय होता है अशुभ प्रकृतियोंके फल देनेकी शक्तिका क्षय नहीं होता। जैसे जो गुणोंका धात करे उन्हें ही तो दण्ड पिलेगा। जो गुणोंका धात नहीं करते, जिनमें कोई दोष नहीं होता है उनका धात नहीं हुआ करता है।

प्रतिवद्वासामर्थ्य वेदनीयको निष्फल न माननेपर केवलिसमुद्धातकी व्यर्थता—यदि जिसकी सामर्थ्य रोक दी गई ऐसा असाता वेदनीय भी अपना कार्य

करने लगे तो भगवानका दण्ड प्रतर आदिक जो विधान होता है वह व्यर्थ होगा, क्योंकि जब आयु कर्मकी स्थिति थोड़ी रह जाती है, वेदनीय आदिक कर्मकी अधिक स्थिति होती है, तो उनको आयुकर्मके समान बनानेके लिए समुद्घात होता है पर जिनकी स्थिति अधिक है और अनेक उपाय करनेपर भी वे अपनी सामर्थ्य नहो खत्म करते तो यह समुद्घात विधान क्यों होता है और फिर मोक्ष भी न हो सकेगा। समुद्घात विधानका यह अर्थ है कि जिस समय अरहत भगवानकी आयुका निकट समय आता है अन्तमुद्घातकी आयु रह गई और शेष कर्मोंकी रह गई हजारों वर्षोंकी तो यह न होगा कि आयु पहले खत्म हो जाय और वेदनीय आदि बादमें खत्म हों। चार अधिकारियां कर्म एक साथ वियुक्त हुए रहते हैं। तब वहाँ जों बढ़ी हुई स्थितिके तीन कर्म हैं उनको आयुके बराबर करनेके लिए समुद्घात होता है।

समुद्घातका विधान—समुद्घात कहते हैं उसे कि आत्मा अपने प्रदेशोंसे शरीर न छोड़कर बाहर फैले। आत्मा शरीर प्रभारी फैला हुआ है इसके इदेश उनने में हो दियतृत है। समुद्घातके समय क्या होता कि आत्माके प्रदेश शरीरके बाहर भी फैलते हैं, अच्युत समुद्घातमें भी कुछ सीमा तक यही होता है। जैसे जब कभी मुनुष्यमें कषाय तेज जगी तो आत्माके प्रदेश शरीरके बाहर भी निकल पड़ते हैं और तेज गुस्सा करने वालेके लोग कह भी देते हैं कि आप अपेसे बाहर क्यों हो रहे हैं? अद्यात्म-दृष्टिसे इसका यह भी अर्थ लिया जाता है कि आप स्वरूपसे बाहर क्यों हो रहे हो? तो जैसे कषाय तेज जगी तो आत्माके प्रदेश शरीरके बाहर थोड़ी देरको फैल जाते हैं। जब शरीरमें तीव्र वेदना हो उस कालमें भी जीवके प्रदेश शरीरसे बाहर फैल जाते हैं। जब मुनियोंके अच्छे या बुरे तेज भाव होते हैं तो तैजस वर्गसात्रोंका उनके कथेसे पृतला निकलता है उस रूपमें प्रदेश फैल जाते हैं। यहाँ भगवान अरहंतके शेष तीनों कर्मोंकी आयुके बराबर करनेके लिए उनका समुद्घात होता है। तो पहले उनके प्रदेश नीचेसे ऊपर तक डंडेके माफिक फैल जाते हैं। फिर अगल बगलमें फैलते हैं तो कपाट के आकार फैल जाते हैं। फिर आगे-पीछे फैलते हैं तो वे प्रतरके आकार हो जाते हैं और फिर जितनी जगह वातवलयमें बची वहाँ भी फैल जाते हैं तो लोकपूरण हो हो जाता है उस समय लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर आत्माका एक एक प्रदेश ठहरा है। इसे समवर्णण कहते हैं, फिर संकुचित होता उसी क्रमसे प्रतर कपाट दण्ड और फिर शरीरमें ज्यों का त्यों रह जाता है। इतने समयमें वे अधिक स्थितिके बांधे हुए कर्म आयुके बराबर हो जाते हैं, उनकी स्थिति सूख जाती है। जैसे धोई हुई धोती फैला दिया तो वह जल्दी सूख जाती है इसी प्रकार प्रदेश फैले तो वे सब सूख करके आयुके बराबर रह जाते हैं। यह कार्य किया जा सकता है तभी तो किया गया। तो यद् बात नहीं रही कि जो कर्म हो वह अपना उतने समय तक फल जरूर ही दे।

प्रभुस्वरूप और भुक्त्यभावका अतिशय—यदि यह कहो कि तपश्चरण

का ऐसा माहात्म्य है कि उससे शेष अधिकारिया कर्मोंकी शक्ति निजीर्ण हो जाती है, क्षीण हो जाती है तो वह अविक स्थितिके रूपमें फल देनेमें समर्थ नहीं है इसलिए आगु कर्मके बराबर वे तीन कर्म हो जाते हैं। इसी प्रकार वेदनीयको मानलो कि प्रभु के तपश्चरणका इतना अतिशय है कि मोह क्षीण हो जानेके कारण अब वेदनीप्र कर्म असाधा नहीं उत्तम कर सकता है। प्रभुस्वरूप कैमा है इसका भान करनेके लिए अपने आपमें प्रयत्न होनां चाहिये, व्ययोंकि बाहरमें हम कुछ आननेकी कोशिश करेंगे तो वह जानना इन्द्रिय द्वारा बनेगा, और इन्द्रिय द्वारा भगवानका स्वरूप नहीं जाना जा सकता। साक्षात् समवशरणमें विराजमान अरहन्त भगवन भी आंखोंसे दिखेंगे तो वहां क्या दिखेगा? भगवानका शरीरपर जो देह है वह प्रभु नहीं, जो अद्वरका जान पुञ्ज है बह प्रभुस्वरूप है। हम लोग भी अवस्थन लेकर प्रभुका धरान करते हैं और नामका अवलम्बन लेते हैं। आदिनाथ अजितनाथ आदि तोर्ध्वङ्ग्रका हम ध्यान करते हैं, पर प्रभुस्वरूप, प्रभु जिसे कहते हैं वह उस शरीरका नाम प्रभु नहीं। प्रभु तो विशुद्ध ज्ञानपुञ्ज है, तब फिर जिसे आदिनाथ अजितनाथ आदि नाम लेकर उनके समयमें पुकारा गया, उसे यों ही समझिये जैसे कि हम आप लोगोंका नाम पुकारा जाता है। तो नामके द्वारा जिसका बोध किया वह तो एक पश्यिका बोध है, प्रभुना नाम नहीं। जो नाम है वह प्रभु नहीं। तो प्रभुस्वरूप चित्तारनेके लिए अपने आपकी स्थिति कुछ ऐसी बनानेका यत्न करें, स्थिर आसनसे, स्थिर चित्तसे स्थिर आत्मस्वरूप को देखनेका यत्न करें। जहां देहका भी भान न रहे कि देह भी है ऐसी स्थितिमें जो एक ज्ञानघन अनुभव होगा, केवल ज्ञानज्योति नात्र ही अपने आपके चिए अनुभूत होगा उस अनुभवके द्वारासे अरहन्तके स्वरूपका अनुमान निया जा सकता है फिर वहाँ सोचो प्रभुके भुवा भी होती है वया?

ध्यानासनोंका प्रभाव—देखिये ध्यानके मुख्य आसन दो बताये गए हैं—
एक पदमासन और एक खड़गासन। और एक अध्यन मृतकासन भी कभी उपयोगी कहा जा सकता है। पदमासन तो सब जानते ही हैं बायें पैरको दाहिनी जांघपर रखा और दाहिने पैरको बायें जांघपर रखा, पैरोंके बीच बायें हाथकी गदेनीपर दाहिने हाथकी गदेली रखा। तो इसमें एक वैज्ञानिक मर्म देखो। हथकी हथेलीसे कुछ चीज़ छूनेमें जलदी उसका ज्ञान होता है और हथकी हथेलीकी जो पीठ है उसके छूनेमें स्पर्श में लगाव जैसा बोध नहीं चलता। तो अब देखिये कि दोनों पैरोंके तलांकी पृष्ठ छुप्रा हुआ है दोनों हाथोंके हथेलिलांकी पीठ छुपे हुए हैं और जब बैठें अपने शरीरका ऊपरी भाग बिल्कुल सीधा करके बैठ जाता है तो इस सीधे आसनसे बैठेमें ज्वासो-च्छ्वास की रंच रुकावट नहीं होती है तो वहाँ श्रम नहीं रहता है। और इस नलीके भीतर ५-६ जगह चक्रावत तथा कमलाकार रचना है जो किसी रूप में डाक्टर या वैद्य बता सकेंगे। जब ध्यानमुद्रा होती है तो छहों स्थानोंके कमल नीचेसे ऊर्ध्वकी वायु का सम्बन्ध पाकर ये षट्क्रक प्रकुलित हो जाते हैं। इस थरीरकी बाह्य स्थितियां हैं,

उसमें मनका प्रासाद बन सकता है, और ज्ञानी पुरुष आत्मतत्त्वके ध्यानमें यथायोग्य इस और आ सकता है। खड़गासनमें ध्यानके लिए किनना अवसर है। कोई पुरुष सामने पैर रखकर चिथर खड़ा होकर शरीरको ऊपरसे ढीला करके खड़ा होकर भीतर का तो कड़ापन पद्मासनकी भाँति रहे मगर ऊपर अपने शरीरको ढीला छोड़कर जब अन्तः अपने उपयोगको सावधान बनाता है तो उस समय इस आसनसे बड़ा सहयोग मिलता है। कभी कोई यह शका न करे कि इस तरह अगर शरीरका भान छोड़कर उस खड़गासनमें अपने भीतर उपयोग लगाकर निविकट रहे तो वह शरीर गिर पड़ेगा क्या ? नहीं गिरता। ऐसी सम स्थितिसे पैरोंको जमा करके उस खड़गासनसे ध्यानाने अपना ध्यान जमाया है। तीसरा आसन अपन सबके प्रयोगके लिए मृतकासन समझ लीजिये। जैसे भुर्दा पड़ा रहता है - दोनों पैर फैले हुए हाथ पसरे हुए और ढोले शरीरसे इस तरहसे मृतकासनसे पड़कर उस समय उपयोगका शरीरमें लगाव न रहे तो ऐसी स्थितिमें भी अपने आपके उपयोगको अपने आपमें बसाये तो उसे बड़ा सहयोग मिलता है।

प्रभुस्वरूपके परिचयीका प्रभुके कबलाहाराभावका अवधारण—
आत्मनोंमें मुख्य है पद्मासन। उससे बैठकर एक बहुत सीधी मुद्रामें रहकर शरीरका भी भान छोड़कर एक मात्र ज्ञानपुञ्ज हूँ मैं इम तरहसे अपने आपको निहारे। भगवान ज्ञान पिण्डको कहते हैं सो अपने आपको भी ज्ञानपुञ्जमात्र सोचे बिना, अनुभव किये बिना, भगवानकी धार्तिका अनुभव और आनन्द नहीं पाया जा सकता और न किर भगवानका स्वरूप क्या है यह समझमें आ सकता है। तो प्रभुको जानना है तो अपने आपके सहज स्वरूपको जानना पड़ेगा। उससे वहाँ परिज्ञान होगा। अब ऐसा कुछ परिज्ञान करके कि वहाँ तो केवल एक ज्ञानपिण्ड है, ज्ञान ज्ञान की वृत्तियाँ हैं और इसी कारण अत्यन्त तिराकुल है। ऐसे उस शान्त ज्ञान मुद्रामें जहाँ अब अर्शांति का कारणशून मोहनीयकी हवा रंचमात्र नहीं चलती। वहाँ तरंगका क्या काम ? भूख, प्यास होना, इच्छा होना ये सब तरंगोंके काम हैं। तो प्रभुमें वेदनीय कर्मका कोई फल नहीं रहता। वे तो अपने अनन्त आनन्दसे ही आनन्दित रहा करते हैं।

सकल परमात्माके वेदनीयको निष्फल न माननेपर मुक्त्यभावका प्रसङ्ग—अब शङ्काकार कह रहा है कि यदि ऐसा कहो कि वेदनीय कर्म यदि निष्फल हो गया तो किर उसे क्यों मानते हो कि वेदनीय कर्म है। फिर मानना चाहिए कि ५ कर्म नहीं रहे- चारधातिया कर्म और एक वेदनीय कर्म। ५ कर्मोंका अभाव मानो। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना ठीक नहीं। कर्म फल दिया ही करते हैं ऐसी हठ करने वाले प्रभुके अन्त समयकी दशापर ध्यान दें कि जब आयु कर्मसे अधिक वेदनीय आदिक कर्म हैं और अपना फज देनेमें समर्थ ही हैं एक हठ ही अगर रखा है तो फिर बतलावो मुक्तिका अभाव कैसे न होगा? आयु खत्म और वेदनीय फल दे

२०६] परीक्षामुखसूत्रप्रवचनं

रहे यह भी विडम्बना समझमें आ सकती है क्या ? यदि कहो कि आमुसे अधिक जो जो वेदनीय रहेगी वह फल देनेमें समर्थ नहीं है तो फिर उनका कर्मत्व नहीं रहा, फिर उनको घटानेके लिए लंकपुरण आदिक समुद्रांत करना व्यर्थ हो गया । इससे वेदनीय तो है, किन्तु मोहनीयके मिटनेपर असाता आदिकका फल देनेमें वे असमर्थ हैं यही सीधा मान लो । यदि कहो कि अपने तपश्चरण अनुष्ठान आदिकके कारण उनमें सामर्थ्य रुक गई इसलिये समान हो जाते हैं तं वही यहांके वेदनीयमें भी लगा लो । धातिया कर्म नष्ट हो गए, मोह दूर हो गया तो अब वह वेदनीय अपना फल नहीं दे सकता है । मोहप्रेक्ष वेदनीय कर्मोदय ही फल देनेमें समर्थ हो सकता है । कारण तो है नहीं और कार्यकी उत्पत्ति मानोगे तो प्रभुके इन्द्रियज्ञान और रागादिभावके सद्ग्राव आ जायगा ।

ब्लेशानुभूतिकी इच्छानुसारिता — हम आप लोग भी जब मोह सताता है, ख्याल बनाते हैं तब अधिक भूखकी पीड़ा होती है और जब भूखका ध्यान ही नहीं रहता तो फिर वहां भूखकी पीड़ा नहीं होती है । कदाचित् थोड़ी सी होती भी है तो वह शांत हो जाती है । परन्तु जो तीन चार बार खाने वाले लोग हैं उनका चूंकि ध्यान उस ओर बना रहता है इस कारण उन्हें भूखकी वेदना अधिक सताती रहती है । यदि कभी तीन चार बार खानेको न मिल पाय तो वे विह्वल हो जाते हैं । तो एक उपयोग देनेकी बात है, अभी आपके शरीरमें कोई फोड़ा कुंसी हो जाय, और आप उसका बार बार ध्यान दें, ख्याल बनायें तो आपको उसकी अधिक पीड़ा महसूस होगी । और यदि आप उसकी आरसे अपना उपयोग हटा लें उसका ध्यान ही न रखें तो वह वेदना फिर उत्तरा अधिक नहीं सताती है । तो चूंकि हम आप लोगोंके यहांकी चीजोंमें मोह लग रहा हैं इस कारण वेदनायें सता रही हैं ।

अनन्तज्ञानानन्दपुञ्ज प्रभुस्वरूपके ध्यानमें समस्याओंका समाथान — प्रभु अरहत देव तो अब चार धातियाकर्मोंसे रहित हो गए, उनके अब किसी प्रकार की वेदनाएँ ही नहीं रही । इस कारण वे अनन्तशक्ति अनन्त आनन्द आदिकसे तृप्त रहा करते हैं । प्रभुके स्वरूपपर जब दृष्टि देते हैं तो वे सारी बातें समझमें आती हैं । हम आप भी ज्ञानानुभव करके उस आनन्दका अनुभवन कर सकते हैं । उमसे आत्मनितक अधिक विशिष्ट निर्मल अनुभवन और स्थिरता प्रभुरे हुआ करती है । हाँ प्रभुके अब इन्द्रियज्ञन्य ज्ञान नहीं रहा, उन्हें अतीन्द्रिय ज्ञान हो रहा है । तो प्रभुका स्वरूप जानें और वे समस्त संकटोंसे रहित केवल ज्ञानपिण्ड हैं, इस तरहका ध्यान बनायें और अपना भी स्वरूप ऐसा ही है, इस तरहका ध्यान बनायें तो इससे मोक्ष मार्गमें बढ़नेमें बहुत सहायता मिलती है, प्रकृत समस्या भी सुलभ जाती है ।

सहकारी मोहके अभावमें वेदनीय कर्मकी निष्कलता — सकल परमात्मा के चारों धातियाकर्म तो नहीं हैं किन्तु चार अधातिया कर्म हैं । अधातिया कर्मोंमें

वेदनीय कर्म भी है, उनका उदय भी है तो उसका उदय होनेके कारण सकल परमात्माके कबलादार होना चाहिये क्योंकि वेदनीयके उदयमें भूख लगती है और भूखका परिहार है भोजन। ऐसी शकायें रखने वालोंके प्रति नाना आपत्तियाँ दिखाई गई हैं। अब शकाकार कहता है कि ये आपत्ति देना कि कारणके बिना कार्य हो तो भगवान के इन्द्रियजन्य ज्ञान भी होना चाहिये, राग-दिक भी होना चाहिए। यह बात यों सम्भव नहीं है कि ज्ञानावरणका क्षयोगशम तो अब रहा नहीं। प्रभुके ज्ञानावरणका क्षय हो गया है और मोहनीयकर्म सहकारी जो था वह भी नहीं रहा, उसका भी अत्यन्त त्रय हो गया, इसलिए इन्द्रियों अपने कार्यमें व्यापार नहीं करतीं। भगवानके शरीरमें नाक, आँख, कान आदिक द्रव्येन्द्रियाँ तो ज्योंको थीं हैं और विशिष्ट रूपवान हैं लेकिन अपने कार्यमें वे व्यापार नहीं कर सकतीं, क्योंकि मोहनीय कर्म सहकारी रहा नहीं। ऐसा कहनेपर समाधान देते हैं कि इसी कारण तो वेदनीयका भी व्यापार न मानना चाहिये क्योंकि वेदनीयके सहकारी हैं मोहनीय। सो मोहन होनेसे वेदना भी नहीं, वेदनाका प्रतिकार भी नहीं। जो अपने आपमें अत्यन्त विरक्त है, परपदार्थों से भी अत्यन्त विरत है ऐं परित्यन्त व्यामोह जीव विषयके लिये किसी भी चीजको ग्रहण करने या कुछ हटानेके लिये प्रवृत्ति नहीं रखता। प्रयोग है, अनुमोन बना लिया जाय कि जो जिस विषयमें अत्यन्त निर्भौम होगा वह उस पदार्थको ग्रहण करनेमें या उसको हटानेमें मेटनेमें प्रवृत्ति नहीं रखता। जैसे जिस माताका किसी पुत्रसे भी हविल्कुल दूर हो गया तो उसको ग्रहण करने और छोड़नेके लिये प्रवृत्ति भी नहीं होती तो मोहनसे अत्यन्त व्यावृत हैं भगवान। वे भोजतको कैसे ग्रहण करे और क्षुधा आदिक का प्रतीकार करनेकी प्रवृत्ति कैसे करें? अगर करते हैं प्रवृत्ति प्रभु तो वे मोही सिद्ध हो जायेंगे। जो पुरुष भोजन ग्रहण करनेका प्रवर्ती करते हैं वे मोही हैं जैसे हम आप लोग ऐसे ही शकाकारने मान लिया कि प्रभु केवली भी भोजन करते हैं तो किर उन प्रभुमें सर्वज्ञता कहाँ रही। वे भगवान भी इन गलियोंमें फिरने वाले साधारण जनोंकी तरहसे ही हो गए।

प्रभुमें बुझुक्षाका प्रसङ्ग होनेपर रिरन्साका भी प्रसङ्ग अब शङ्खाकार से कहा जा रहा है कि यह जो भूख है, यह मोहनीयकी अपेक्षा न रखकर मात्र वेदनीयका काम नहीं है जिससे कि मोहरहित भगवानमें भी वेदनीय भूखको सम्भव बता सके। भूखका अर्थ क्या है? कोई कहे कि कैसी होती है वह भूख जरा दिलाओ तो सही, तो क्या कोई उस भूखको दिलासकेगा? भूखका अर्थ क्या है? इसे संस्कृतमें कहते हैं बुझुक्षा। जिसका अर्थ है भूख अर्थात् भोजन करनेकी इच्छा। तो भगवानके मोहनीयका अभाव है इंडिए उनके बुझुक्षा हो ही नहीं सकती, खानेकी इच्छा हो ही नहीं सकती। खानेकी इच्छाका नाम है भूख। यदि खानेकी इच्छारूप बुझुक्षा मोहकी अपेक्षा किए बिना केवल वेदनीयका ही कार्य मान लिया जाय तो इच्छाका स्वागत करवा दिया जानेसे फिर उनके रिरंसा भी होना चाहिये। रिरंसाके मायने हैं विषय

रमण करनेकी इच्छा । जब मोहके बिना भोजनकी इच्छा हो गई तो मोहके बिना साधारण गृहस्थोंकी भाँति रमणकी इच्छा मान लीजिये किर आप स्वकलित प्रभुमें । परन्तु प्रभुमें यह तो कभी भी सम्भव नहीं । दुर्भक्षा भी सम्भव नहीं । तो कबलाहार की तरह लोग आदिकमें भी प्रवृत्तिके प्रसङ्ग आनेसे फिर इस प्रभुमें और उन साधारण जनोंमें फर्क क्या रहा ? तो जैसे रिरंसा मोहके न होनेसे नहीं है, प्रतिपक्ष भावनासे नहीं है, दूर हो गई इसी प्रकार भोजनकी इच्छा भी कभी नहीं होती है इच्छा विनष्ट हो गई । जैसे लोग आदिककी आकांक्षा निर्मांह जानके भावसे विनष्ट हो जाती है और यह संभव नहीं कि इच्छा न हो किर भी प्रवृत्ति हो । यदि कहो कि भूखकी इच्छा नहीं है फिर भी कबलाहार करते हैं तो यों भी कोई कह डाले कि लोगोंमें रमण करने की इच्छा नहीं है फिर भी स्त्रीमें रमण करते हैं । तो प्रभुमें कबलाहार बिलकुल सम्भव नहीं है यह बात कही जा रही है ।

अनन्तानन्दमय प्रभुमें दुःखरूप क्षुधादि बाधाका अभाव—यदि ऐसा कहो कि भाई इच्छा वाली भूख तो नहीं है पर भूख है इसलिए निर्मांहमें भी भूख सम्भव है । उत्तर देते हैं कि खेर, विना इच्छाके भी भूख होना मान लो जो कि होती तो नहीं है, तो भी यह बताओ कि वह भूख दुःखरूप है कि सुखरूप है ? तो अनन्त सुख वाले भगवानमें यह भूख कौसे सम्भव है ? देखो निसका जो बलवान विरोधी मौजूद है वहां उसका कारण भी हो तो भी वह प्रकट नहीं हो सकता । जैसे अत्यन्त गर्म प्रदेशमें शीतका कोई कारण भी मौजूद हो तो भी शीत नहीं हो सकता । जैसे वहाँ बहुत तेज अग्नि जल रही है, जिस कमरके अन्दर और वर्हाँ ठंडा करने वाली मशीन रख दी जाय तो वहां मशीन काम नहीं कर सकती, क्योंकि विरोधी बलवान मौजूद है, इसी प्रकार क्षुधा आदिक दुःखोंका विरोधी बलवान है अनन्त आनन्दका अनुभव । तो उसके रहते हुए क्षुधा आदिक दुःख उत्पन्न हो जायें यह कभी सम्भव नहीं ।

समवशारणमें स्थित ही प्रभुके कबलाहार माननेपर मार्गविनाश—अब कुछ फुटकर बाँते सुनो ! मानलो कि वेदनीय कर्म है और भूखका फल देने वाला है, पर यह बताओ कि उस भूखके कारण वे भगवान समवशारणमें बैठे हुए ही खा लेते हैं या चर्या करके खाते हैं ? यदि कहो कि समवशारणमें बैठे ही वे खा लेते हैं तो उन्होंने आहारविधिका मार्ग नष्ट कर दिया । आहार तो चर्याविधिसे लिया जाता है और उन्होंने वहां ही अपने घरमें बैठे हुए भोजन कर लिया तो फिर उन्होंने खण्डन कर दिया इस आहारविधिका ।

समवशारणस्थित प्रभुके कबलाहार माननेपर अन्य दोष—दिग्म्बर जैन सिद्धान्तमें तो आहार माना ही नहीं गया, वर्हा प्रश्न क्या उठाना ? इवेताम्बर सिद्धान्तमें जो आहारविधि बतायी गई कि घरमें भोजन माँग लाये और फिर किसी

जगह बैठकर खा लिया। तो ऐसी वह आहारकी विधि तुम्हारे कल्पित प्रभुमें न नहीं। दूसरी बात यह है कि भूख लगी तो उसके बाद यदि तुरन्त आहार न मिले तो वे प्रभु उदास ही जायेंगे, कमजोर हो जायेंगे। तो जैसा ज्ञान समर्थ अवस्थामें रह सकता था वैसा ज्ञान कमजोर अवस्थामें तो न नहीं होगा ज्ञानमें कभी आ जायगी। तो फिर मार्गिका उपदेश करना कैसे सम्भव है? यदि यह कहो कि भगवान्के जब असात्ता देवनीयका उदय आता है, भूख होती है तो देवता लोग उनका आहार सम्पादित कर देते हैं, उसकी विधि वहीं बना देते हैं, तो कहते हैं कि यह बात तो कपोलकल्पित है। यदि कहो कि आगममें लिखा है तो ऐसा आगम बताओ कि हमें भी मान्य हो और तुम्हें भी। ऐसा तो कहीं नहीं लिखा कि देवता लोग प्रभु केवलीका आहार सम्पादित कर देते हैं। साधु अवस्थामें भी देवता लोग आहार दें तो वे आहार न लेंगे। यदि यह कहें द्वेषान्बर जैन कि हमारे आगममें लिखा है कि जब भगवान्के क्षुधा होती है तो देवता लोग ही समवशरणमें उहें आहार रच देते हैं तो तुम्हारे आगममें यह भी तो लिखा है कि किसी प्रकारका उपसर्ग भी प्रभुपर नहीं होता। तो फिर यह भूखका उपसर्ग कैसे हो गया? यह भी लिखा है कि भूखके उपसर्गका प्रभुमें अभाव है तो फिर यह विकल्प न बना कि वे प्रभु समवशरणमें बैठें ही भोजन कर लेते हैं।

घर घर जाकर व एक घरसे भिक्षा लेनेपर प्रभुत्वका नाश—देखो भोजनकी बात प्रभुमें किसी प्रकार सम्भव नहीं है और द्वेषान्बर हिंद्वात्में लोग मान रहे हैं तो उनसे पूछा जा रहा है कि वे प्रभु आहार विधिसे भोजन करते हैं क्या? आहारके लिए जाते हैं क्या? तो यह बताओ कि घर-घर जाते हैं या एक ही घरसे भिक्षा ले आते हैं। क्योंकि उन्हें तो ज्ञान होगा ही कि आज हमारी भिक्षा इस घरमें मिलेगी। तो जिस घरका ज्ञान है उसी घरमें जाकर भिक्षा ले लेते हैं या दसों घरोंमें जाकर भिक्षा ले लेते हैं? शङ्काकारके सिद्धान्तमें कहा है कि साधुकी चर्यामें घर घर से भोजन लाया जाता है और फिर उसे इट्टा करके अपने स्थानपर बैठकर खाया जाता है। यद्यपि शीघ्र सुननेमें भला लग सकता है कि बड़ा ठीक करते हैं। थोड़ा-थोड़ा इधर उधरसे मांग लिया और फिर बैठकर खा लिया, तो आजकल शुद्ध भोजन करनेमें असुविधा चली इससे चाहे अच्छा मान लो लेकिन उसमें अनेक आपत्तियां हैं। अनेक प्रकारके बर्तन रखने पड़े, उनमें मूर्छा जगे, उनके घरने उठानेकी सम्हाल करनी पड़े। और अपने आप भोजन किया तो स्वच्छन्द होकर किया। वहां आन्तराय आदिक का कोई विचार नहीं रहता। जैसे गृहस्थ लोग टिप्पन बक्समें अपना खाना रख लेते हैं और जब चाहे उसे निकालकर खा लेते हैं। तो ऐसी ही स्वच्छन्दता उन साधुओंमें हो जाती है। साधु यदि बर्तन रखेगा तो बर्तनोंको धोना सुखाना उठाना रखना होगा, साधु यदि बर्तन रखेगा तो उसे कभी कभी उन बर्तनोंके प्रति दूसरोंसे लड़ना फ़ाड़ना भी पड़ेगा। यों अनेक आपत्तियां आ जायेंगी। और साधुजन तो निर्णय होते हैं, विद्धि और कमण्डल द्वारा उपकरणोंके अतिरिक्त अन्य कोई प्रकारका परिश्रग्ह

वे नहीं रखते हैं। यहां तक कि शास्त्रोंके बन्डल भी बनाकर वे साथमें नहीं रखते। शास्त्रं जहां जो मिले उससे वे ग्रात्मस्वाध्याय करते हैं, सहज ही कोई एक पाठ पुस्तक रही जाय शास्त्रों तक का भी परिग्रह वे नहीं रखते। ध्यानकी स्थिति भी बास्तवमें तब ही सही बन पाती है जब कि निष्परिग्रहता हो। तो साधुजन यदि भोजनके लिए उत्तम भाँड़े आदिका परिग्रह रखते तो फिर उनके ध्यानकी स्थिति कैसे बन सकती है? इवेतपट नियमानुसार साधु यथा तत्र भिक्षा माँगने जाया करते हैं, उन्हीसे पूछा जा रहा है कि वे प्रभु यदि कबलाहार करते हैं तो उन्हें तो यह ज्ञान रहता ही है कि हमारा आहार आज आमुक आमुक जगह होगा, तो वे वहां जाकर आहार ले आते हैं या घर घर जाकर भिक्षाकी खोज (एषला) करते हैं? यदि यह कहो कि वे प्रभु आहार लेनेके लिए घर घर जाते हैं तो इसके मायने है कि भगवानके अज्ञान है उन्हें पता ही नहीं कि हमारा कहां कहां भोजन मिलेगा और यदि यह कहो कि प्रभु तो उस ही एक घर जाते हैं और आहार अनेनि निवास स्थानपर लाकर कर लेते हैं तो इसमें फिर भिक्षाशुद्धि नहीं रहती है।

मांस, जीववध, विष्टादिकका साक्षात्कार करते हुए भी भोजन लेने पर निष्करणता व हीनताका प्रसङ्ग - और भी पूछा जा रहा है शङ्खाकारसे । के वे प्रभु जब भोजन करते हैं तो उनके केवलज्ञान रहता है या नदारत हो जाता है? यदि कहो कि सदा केवलज्ञान रहता है तो भोजन करते समय भी सारी दुनियां ज्ञानमें रहती है कि नहीं, अर्थात् शिकारी लोग, जीववध मांस आदिक गन्दी चीजें और ये भल मूत्रादि अपवित्र चीजें ये भी सब उस समय ज्ञानमें रहती है या नहीं? यदि ये सब चीजें उस समय ज्ञानमें रहती हैं तो इसके मायने है कि उन प्रभुमें करुणा नहीं है यहां तो साधारण गृहस्थ लोग भी यदि किसी बिल्लीको किसी घूटको खाती हुई देख लेता है तो वह भी करुणादश अपने सामने रखा हुआ भोजन भी छोड़ देता है। पर वे भगवान यदि समस्त विश्वका ज्ञान रखते हुए भी यदि भोजन करते समय भोजन को न छोड़ दें तो वे तो करुणारहित माने जायेंगे। यदि कहो कि उस भोजन करते समय उन्हें सारा विश्व ज्ञानमें तो आता है फिर भी वे भोजन करते हैं तो यहांके मामूली आदमियोंसे भी वे प्रभु हीन हो गए।

प्रभुकी विशुद्ध ज्ञानवर्तन्ता — सकल परमात्मा प्रभुका स्वरूपतो अत्यन्त निर्मल है, वे मनुष्य शरीरमें इस समय स्थित हैं। केवलज्ञान लोनेके बाद जब तक आयु समाप्त नहीं होती तब तक वे केवली भगवान शरीरमें रह रहे, और उनका वह शरीर परमोदारिक हो गया। उनका वह शरीर समस्त प्रकारकी अपवित्रताओंसे रहित हो गया। तो ऐसे पवित्र शरीरमें स्थित हैं वे प्रभु; पर उनका स्वरूप क्या है, उनका अनुभवन क्या है, उनका कार्य क्या चल रहा इस पर भी तो दृष्टि दें। भगवान केवलज्ञान ज्योतिके पूज्ज हैं ना, उनमें क्या बातें बीत रही हैं इसे भी तो निरखें?

उनके केवल जानन जानन ही चल रहा है। तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थ निविकल्प होकर ज्ञेय ही रहे हैं। हम आप जिस तरह परपदार्थोंका ज्ञान करते समय अनेक प्रकारकी कल्पनायें करते, अनेक प्रकारके क्षोभ मचाते, ऐसी बात अब उन प्रभुमें नहीं रही। वे तो जो हैं सो यथार्थ रूपसे जानते हैं। जैसे हम आप लोग जानते हैं कि यह हमारा घर है, यह अमुका घर है। इस प्रकारसे प्रभु नहीं जाना करते हैं। हम आपके जानेमें तो अनेक प्रकारके विकल्प, अनेक प्रकारके क्षोभ मचा करते हैं, पर प्रभुके निविकल्प, निस्तरंग ज्ञान है। तो ऐसी दशामें प्रभुमें भूख्यासादिककी देवनायें कहाँ सम्भव हैं। ये वेदनायें तो एक उपसर्ग हैं।

ज्ञानज्योतिमात्र अरनी प्रतीति करनेका कर्तव्य —भैया ! हम आप भी अपने बारेमें सोचें कि हमें आखिर कैसा बनना चाहिए कि जिस स्थितिमें मेरेको कोई भी सङ्कट न रहे। ऐसा तो सभी लोग सोचते हैं मगर भली विविसे नहीं सोचते। चाहते तो सभी ऐसा हैं कि मैं अपनी ऐसी पौजीशन बना लूँ कि फिर कोई सङ्कट न आ सके। उसीके लिए प्रयास करते हैं पर अन्य वस्तुपर हमारा अधिकार है नहीं और प्रयत्न करते हैं अन्य वस्तुके सम्बन्धमें। इसलिए उसमें सफलता नहीं मिल सकती। हमारा एक सङ्कट मिटा कि दूसरा सङ्कट भासने आगया, तो इससे अच्छा यह है कि हमारी ऐसी स्थिति बने कि फिर एक भी सङ्कट न रहे। पर निरंय तो कर लो कि वह कौनसी स्थिति है जिसमें फिर कोई सङ्कट नहीं रहता। वह स्थिति है कैवल्यकी। मैं आत्मा अखिर हूँ कौन। मैं जो हूँ वह शरीर नहीं है। यह बात तो स्पष्ट विदित है कि जब जीव शरीरको छोड़कर चला जाता है तो वह शरीर मुर्दा हो जाता है वह शरीर जीवरहित होजाता हैं उसे फिर सभी लोग जीवरहित समझकर ही निःशक होकर जला डालते हैं। तो मैं देह नहीं हूँ। मैं तो स्वतन्त्र सत्तावान आत्मा हूँ। उस मेरेका स्वरूप क्या है ? किस तत्त्वसे रका हुआ हूँ। उसमें क्या तत्त्व भरा है ? बस एक ज्ञान ज्योति, ज्ञान स्वरूप, ज्ञान प्रकाश भरा है। अपने प्रन्दर निरखो तो कुछ ध्यानमें आयगा कि यह है ज्ञान ज्योति जानमात्र। जिस स्वरूपको पकड़कर नहीं बता सकते, किन्तु समझवें आयगा। ऐसा जो ज्ञानमात्र भाव हो, ऐसा ज्ञान भावात्मक मैं आत्मतत्त्व हूँ तो ज्ञानमात्र यह आत्मतत्त्व जिसके पूर्ण निर्मल प्रकट हो गया है पूर्ण विकास जहाँ हो गया है, ऐसी है प्रभुकी स्थिति, जहाँ कोई कल्पना नहीं, किसी ओरका विचार नहीं, तर्क नहीं, रागद्वेष नहीं। ऐसी मलरहित जो स्थिति है उस स्थितिमें सङ्कट नहीं है।

शरीररहित अवस्थामें सर्वथा निःसङ्कट परिणमन—मोटे रूपसे विचारो तो लोकके सारे सङ्कटोंकी बड़ तो यह शरीर है, शरीर है तभी भूख लगती है तभी ठंड, गर्मी लगती है। तभी सभीको इज्जत पौजीशन सम्मान अपमान आदिककी बातें भहसूस होती हैं। तो इन सभी चीजोंके कारण इस जीवको दुःखी होना पड़ता है।

शरीरपर ही दृष्टि होनेके कारण लोग अपने नामकी चाह करते हैं। आज जो धन वैभवके पीछे लोग इतनी होड़ मचा रहे हैं और अनेक प्रकारके दुःख उठा रहे हैं उसका कारण यह शरीर है। तो इस लोकके समस्त दुःखोंका सूलकारण यह शरीर है। शरीर ही न रहे तो फिर कोई सङ्कृट ही नहीं रह सकता। आप सबकी समझमें तो बात आ रही होगी? मगर कभी ऐसी भी इच्छा जगी कि नहीं कि मैं भी इन समस्त दुःखोंसे छूट जाना चाहता हूँ। मेरे शरीर भी न रहे, मैं तो इस शरीरसे रहित निर्मल ज्ञानप्रकाश मात्र, ज्ञानपुञ्ज रह जाऊँ। जो ऐसे २ह गए उन्हींका नाम भगवान् है। वे भगवान् सर्व सङ्कृटोंसे रहित हैं। इस विशुद्ध स्वरूपके चिन्तनसे समस्त सङ्कृट सदा के लिए विदा हो जाते हैं। कितने ही सङ्कृटोंमें फसा हो बोई मनुष्य, सङ्कृट तो असल में है नहीं, कल्पनायें करके सङ्कृट मान लिया है पर कल्पनायें करके भी माने गए सङ्कृट कैसे ही विकट आ गये हों, लेकिन यह आत्मा उन सङ्कृटोंके विषयभूत बाह्य पदार्थोंसे भिन्न अपने आपको निरखकर उसका लगाव छोड़कर जैसे ही वह अपने सहज ज्ञानस्वरूपके अनुभवनमें आता है आप बतलावो उस समय उसके कोई सङ्कृट है क्या? कोई भी तो सङ्कृट नहीं है। हमें भी यदि उन समस्त सङ्कृटोंवें सदाके लिए दूर होनेकी इच्छा है तो सङ्कृटोंसे दूर होनेका जो यह ज्ञानानुभवरूप यत्न है। यह तो कहीं बार किया जाना चाहिये ना, तो इस ज्ञानानुभवके यत्नसे हम आपमें भी अन्तरङ्गमें ऐसा बन प्रकट होगा कि किसी समय समस्त सङ्कृटोंसे मुक्त हो जायेगे। यही है समस्त सङ्कृटोंसे पार हुए ही अवस्था।

जीवबध, माँस आदिका साक्षात्कार करते हुए भोजन करनेमें प्रभुकी दोषमयता—अब यंकाकार कह रहा है कि जैसे हम लोग यहाँ पर कुछ भी चीज शुद्ध अशुद्ध देखी हुईका स्मरण करते हुए भी भोजन करते हैं इसी प्रकार केवली भगवान् इन शुद्ध अशुद्ध पदार्थोंका साक्षात्कार करते हुए भी भोजन कर लिया करते हैं। समाधानमें कहते हैं कि यह असङ्गत बात है। हम लोगोंकी सर्वज्ञ भगवानके साथ कोई तुलना नहीं की जा सकती है। वे परम चारित्र वदार प्राप्त हैं। जिनके यथार्थत संयम प्रकट हो गया है, जिनके रागदेषकी कथिका भी नहीं रही, जो अनन्त आनन्दसे सदा तृप्त रहा करते हैं ऐसे सर्वज्ञ परमात्माके साथ अपनी तुलना करके अपनी करतूतोंकी तरह प्रभुकी करतूत मान लेना सङ्गत बात नहीं है। और फिर देखो कि हम लोग भी जब किसी प्रकारसे जिस मांगमें चल रहे, मांगमें जो चीज दिख गई किमी मी प्रकारसे किसी भी देखो हुई अशुद्ध वस्तुका स्मरण कर लेते हैं और स्मरण करते हुए भी भोजनका परित्याग करनेमें असमर्थ होकर भोजन करते हैं तो दोष ही तो माना जाता है। यथार्थ बात सो यह है कि हम लोग भी जब माँस आदिका स्मरण ही जाय तो उस कालमें भोजन नहीं करना चाहते, पर प्रभुको स्मरण भी हो रहा, जानकारी भी चल रही और फिर भी भोजन नहीं छोड़ सकते भोजन कर लिया तो आखिर दोष ही तो रहा। और फिर दोषकी शुद्धिके लिए

गुरुवोके समीप निदा करते हुए, जो गुरु प्रायशिच्छत बतायें वे साधुजन करते हैं, साधा-रण गृहस्थ भी करते हैं और जो ऐसी स्थितिमें अशुद्ध पदार्थका स्मरण करते हुएमें भोजनका परिणाम करनेमें समर्थ है वे विरक्त पुरुष आहारशुद्धिमें निर्दोष विविका अथवा संकल्प बनाए । ए हैं, वे परम विरक्त पुरुष हैं । उन्होंने शरीरकी अपेक्षा भी छोड़ दी है । जिह्वाको जिन्होंने वश कर लिया है । जो अन्तरायके विषयमें बहुत निपुण बुद्धि रखते हैं, जिन्हें समस्त दोषोंका परिज्ञान है कि इन्हें छोड़ देना चाहिए, ऐसे साधुजन अशुद्ध पदार्थोंका स्मरण करते हुए भी भोजन नहीं करते ।

प्रभु अकेले या संसंघ भिक्षा करनेमें दीनता व सावद्य दोषका प्रसङ्ग—
अब शङ्खाकारसे पूछा जा रहा है कि तुम्हारे केवली प्रभु भोजन करते हैं तो यह बतलावो कि वे प्रभु अकेले ही भोजन करते हैं या अपने संघमें जो सैकड़ोंकी संख्या में शिष्यजन रहते हैं उनके साथ भोजन करते हैं ? जैसे यहाँपर भी तो कुछ लोग इकट्ठे बैठ जाते हैं, गप्पे भी करते रहते हैं और खाते भी जाते हैं । उस तरह से बैठकर प्रभु भोजन करते हैं या सभी शिष्योंसे अलग होकर अकेले ही भोजन करने चले जाते हैं ? यदि कहो कि प्रभु अकेले ही भोजन करने चले जाते हैं तां पर उन प्रभुमें उदारता कहां आयी ? जैसे कोई खानेका आसक्त पुरुष यहां सी अपने साथियोंको छोड़कर अकेला ही भोजन करने चला जाता है और भोजन कर आता है उसी तरहसे यदि प्रभु भी करते हैं तो उनमें प्रभुता कहां रही । वे तो दीन ही रहे । यदि कहो कि शिष्योंके संगमें बैठकर भोजन कर आते हैं तो किर उसमें सावत्त का प्रसङ्ग आ गया, राग हो गया, पूछाताथी हो गई, एक दूसरेका निरखना हो गया और विधिमें भी स्नेह आदिक आनेसे बाप लगा ।

प्रभुके भोजन करके प्रतिक्रमण करने या न करनेमें सदोषताका प्रतिपादन—अच्छा—एक बात और भी बतलावो कि प्रभु मानलो तुम्हारे सिद्धान्तसे भोजन कर लेते हैं तो किर वे भोजन करके प्रतिक्रमण अदिक करते हैं या नहीं । भोजन कितना ही निर्दोष विधिसे किया जाय, भोजन करना स्वयं दोषमयी कार्य है, इसीलिए तो साधुजन भोजन करनेसे पहिले भी और भोजन करने के बाद भी प्रतिक्रमण किया करते हैं । जैसे सामान्यतः आहार करनेके बाद विद्धभक्ति पढ़ कर कार्योत्सर्ग करना ये सब साधुजन करते हैं । क्यों करते हैं कि भोजन करने में जो कुछ झेंह जगा है, कहीं पर दृष्टि जारी है, स्वभावकी सुविध भूलकर उस ओर लग गए हैं । वे सब दोष मेरे दूर हों उस अभिप्रायको लेकर प्रतिक्रमण किया जाता है, गमोकार मंत्रका स्मरण किया जाता है । आहार गृहण करनेके पहिले जो कार्योत्सर्ग किया जाता है, हमारे द्व्यालसे उसका प्रयोजन यह है कि भोजन जैसा विकल्प विपत्ति वाला काम जिसमें हम पड़ रहे हैं, जिस काममें हम लगने जा रहे हैं उस काम में दोष है, कहीं भोजन करके मेरेमें प्रमाद न उत्पन्न हो जाय, मैं प्रमत्त न बन जाऊं,

कहीं मेरी सावधानी न खतम हो जाय, कहीं मेरे प्रभुकी तुष न हट जाय, कहीं मैं उस भोजनका रागी न बन जाऊँ, आदि । इस प्रकारके दोष भोजनमें समझकर वे साधुजन कार्योत्सर्ग किया करते हैं । तो ज्ञानी व्यानी सावु पुरुषोंने कितनी ही सावधानियाँ रखकर भोजन किया लेकिन उस प्रसङ्गमें चूँकि वह काम ही ऐसा है कि कुछ राग भी होता, किसी वस्तुके स्वादमें भी थोड़ा पहुंचते, सो ये सब दोष भोजन करते समय हो गए । अब उस भोजनसे निवृत्त होनेके बाद एकदम अपनी सुविधा आती है और उन मलित्योंका स्थाल होता है तो उससे सीधे प्रभुकी शरणमें आने उपयोगको पहुंचाते हैं और उस समयमें प्रभुके निराहार स्वरूपका विचार करके अपने आपको निहारते हैं । कहाँ तो मेरा ऐसा निराहार स्वभाव था । कहाँ तो अपने ज्ञानानन्द स्वरूपमें रत रहने का काम था और यहाँ कितना विकल्पोंमें विवात्तियोंमें अगरनेको फंगा डाला और इस पर्यायमें मैं कैसा एक बन्धनमें जकड़ा हुआ हूँ कि प्रमाद किए बिना यहाँ गुजारा नहीं हो रहा है । यों वे साधुजन अगली निंदा करते हुए प्रभु स्मरण करते हैं और जो दोष हो गए वे मेरे द्वार हों, इस प्रकारकी भावना रखते हुए कार्योत्सर्ग करते हैं ।

भोजन करके प्रतिक्रमण करने व न करनेमें प्रभुके सदोषत्वका विवरण शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि तुम्हारे प्रभु यदि कबलाहार करते हैं तो भोजन करके फिर प्रतिक्रमण करते हैं या नहीं ? यदि कहो कि प्रतिक्रमण करते हैं तो इसका अर्थ यह है कि प्रभुने दोष किया ! प्रभु दोषरहित होते तो प्रतिक्रमणकी आवश्यकता व्यथा थी ? प्रतिरमण कहते ही उसे हैं जो लगे हुए दोषको दूर करनेके लिए प्रायश्चित्त किया जाय । और यदि कहो कि प्रतिक्रमण नहीं करते हैं तो बतलाओ भोजनके कार्य से उत्पन्न हुए जो दोष हैं उन दोषोंको प्रभु कैसे दूर करें ? जब भोजन मात्रकी कथा करनेसे भी साधुजन प्रमादी माने गए हैं और तुम्हारे कल्पित अरहंत भगवान भोजन करते हुए भी प्रमत्त न कहलायें, प्रमादवान न कहलायें तो यह तो केवल कथन मात्र है । तुम ऐसे सदोष स्वरूपको प्रभु मानकर भी चल रहे हो यह तुम्हारे घरकी श्रद्धा मात्र है । और, कहोगे कि हो जाते हैं वे प्रमत्त, कषायवान तो वे प्रभु कहाँ रहे, वे तां श्रेणिसे भी गिरकर प्रमत्त साधु हो गए ।

प्रमादके परिहारका अनुरोध—प्रमादी उसे कहते हैं जो अपने आत्म-कल्याणके कार्यमें प्रमाद करे । कोई पुरुष घरमें आलसी पड़ा हुआ है उसका ही नाम प्रमाद न समझिये, कोई पुरुष खूब आरम्भ व्यापार रोजिगार आदिकमें लगा रहता है खूब स्नेह करके भौजसे रह रहा है तो क्या वह प्रमादी नहीं है ? अरे, ये सांयारिक काम कोई आत्माके काग नहीं है । ये हो गए तो उनमें राजी रहे, न हुए तो राजी रहो । घन कम है तो कुछ बात नहीं, अधिक हो गया तो कुछ बात नहीं, ये कोई बड़ी समस्यायें नहीं हैं, इनमें कुछ हर्ष विषाद न मानिये । सबसे बड़ी समस्या तो यह है कि जो अपने जन्म-मरणकी परम्परा चल रही है, इस जन्म-मरणकी परम्परा भेटनेकी

बात सोचिये ! मानलो, आपका मरण भी हो रहा हो तो वह भी कोई बड़ी समस्या नहीं है । ऐसे मरण तो अनन्त बार हुए, चलो एक मरण और सही । अरे, मरण करते करते तो मरण करते में अस्थस्त हो जाना चाहिये । मरण करना कोई अनहोनी बात तो नहीं हो रही । तो मरणकी भी कोई बड़ी समस्या नहीं । सबसे बड़ी समस्या की बात है इस जन्ममरणकी परम्पराका चलना । बस इस जन्म-मरणकी परम्पराका निवारण करनेका यत्न कीजिये ।

बड़ोंके कार्यकी सराहनामें बड़ोंका आदर—अच्छा आप यह बतलावो कि जिन बड़ोंको हम आप पूजते हैं—प्रभुको, अरहंतको सिद्धको, उन बड़ोंने जो काम किया है उस कामकी आप सराहना रख रहे कि नहीं ? अगर नहीं रख रहे तो पूजन क्या ? वह तो केवल एक रुढ़ि है, ढोंग है या और कुछ है । बड़ोंके कामकी सराहना हो रही हो चित्तमें तो समझना चाहिए कि बड़ोंके प्रति हमारा आदर है और जिनके कामकी सराहना नहीं वहाँ तो आदर न समझिये । प्रभुने क्या किया था ? वे भी हम आप जैसे ही पुरुष थे, पर उन्होंने वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान करके, सही जानकारी के बजसे उन्होंने जो कि सहज प्रकृत्या होना ही चाहिए, परसे उपेक्षा की, अपने आपके उस सहज पवित्र ज्ञान ज्योति स्वरूपमें रुचि की और उस रुचिका प्रभाव यह था कि उनके निरन्तर यह प्रतीति रहती थी कि मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूँ, यह जो बाहरमें दिखने वाला शरीर पिण्डोल दिखता है यह मैं नहीं हूँ यहाँ तक कि अपने आपके अन्दर कर्म उपाधिके सम्पर्कके कारण जो रागादिक विभाव विकल्प वितर्कं उत्पन्न हो रहे हैं यह भी मैं नहीं, केवलज्ञान ज्योतिमात्र हूँ, जो कि सर्व आत्माओंमें समानरूपसे विस्तृत है, जो सामान्य है, जहाँ कोई विकल्प नहीं, तरङ्ग नहीं ऐसा ज्ञानप्रकाशमात्र मैं हूँ । ऐसी सच्ची प्रतीति यदि अपने बारेमें हो तो फिर कषायें कहाँसे उत्पन्न हों, फिर सम्मान अपमान आदिककी बातें वर्णों जेगेंगी ? उसे फिर सङ्कट ही क्या रहा ? तो प्रभुने छ्यास्थ अवस्थामें निःसङ्कट ज्ञान ज्योतिमात्र विशुद्ध अत्मतत्त्वकी प्रतीति की, जिसके बलसे उत्तरोत्तर अपने ज्ञानस्वभावमें स्थित होकर अन्तर्बह्य परिव्रहका जब लवलेश न रहा और केवल एक अंतस्तत्त्व की भावना की, तो उस निविकल्प समाधिके बजसे उस परम शुक्ल ध्यानके बलसे उनके चार घाँटाना कर्म दूर हो गए और वे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त सुख, अनन्त शक्तिसे सम्पन्न हो गए । बतलावो प्रभुकी ऐसी स्थिति हम भी अपने बारेमें चाहते हैं या नहीं ? जैसे प्रत्येक पुरुष अपने बारेमें जीवनका कोई एकमात्र प्रोग्राम रखा करता है । मुझे जीवनमें करना क्या है आखिर । कोई लोग तो अपना प्रोग्राम बनाते हैं राष्ट्र त मिनिस्टर बननेके लिए, कोई लोग धनिक बननेका प्रोग्राम बनाते हैं अशवा कोई लोग कुछ थोड़े आदिवियोंका नायक बननेका अनन्त प्रोग्राम बनाते हैं । ये सभी लोग अपना कोई व कोई प्रोग्राम बनाते हैं, पर एकमात्र यदि यह प्रोग्राम बना लिया जाय कि निविकल्प ज्ञानस्वरूप मात्र स्थिति जो अरहंतदेवकी है, प्रभुकी है ऐसी ही स्थिति मेरी बने, बस मैं तो यही

मात्र हैं, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी बात मैं त्रिकालमें नहीं चाहता। ऐसा एकमात्र अपना प्रोग्राम बना हो तब तो समझिये कि प्रभुके हम अच्छे भक्त बन गए और तभी प्रभुके बद्दन करनेके अधिकारी हैं। प्रभुका स्वल्प वीतराग और परिपूर्णज्ञानानन्द मात्र है। किन्तु यहां शङ्खाकार मान रहा है कि ऐसे ये प्रभु भी भोजन करते हैं। तो देखो ! सारे ऐसे भोजनके साथ हैं। सो भोजनके प्रसङ्गसे वे प्रमादी हो गए, प्रमादी हो गए तो वे श्रेणीसे गिर गए। प्रभुता तो दूरकी बात है। वह तो श्रेणीके गुणस्थान में भी नहीं हैं, फिर उन्हें केवली कैसे कहा जायगा।

गुणस्थान—गुणस्थान १४ होते हैं। गुणस्थानके मायने हैं आत्माके गुणोंके स्थान याने कक्ष। आत्ममें दो मुख्य गुण हैं जिनके विपरीत रहनेसे संसारमें हलनापड़ता है और जिनके विशुद्ध विकाससे संसारसे मुक्त हो जाते हैं। वे दो गुण हैं श्रद्धा और चारित्र। ज्ञान इसके साथ ही लगा हुआ है। जैव जीवकी श्रद्धा यदि विपरीत हो—देहको माने कि यह मैं हूँ, वन वैभवको माने कि यह मेरा है अर्थात् आपके अन्दर उठने वाले विकल्पोंको माने कि यह मैं हूँ तो यह सब उल्टी श्रद्धा है। रागो देवोंको माने कि ये प्रभु हैं, राग भरी अज्ञान भरी बातोंके लेकर जो शास्त्र लिखे हुए हैं उन्हें माने कि ये शास्त्र हैं, सारं न सपरिग्रह साधुवोंको माने कि ये साधु हैं, इस प्रकारकी विपरीत श्रद्धा रहे तो ये बातें जीवको संसारमें भटकाने वाली हैं। और अगर श्रद्धा सही हो जाय तो इसके बलपर जीव मोक्षमार्गमें बढ़ता है। तो श्रद्धा और चारित्र इन दो गुणोंके कारण ये गुणस्थान बने हैं। साथमें एक योग भी है पर उसकी प्रधानता नहीं। उसका अन्तिम प्रतियोग एक सहज बात है इस कारण इन दो गुणों पर दृष्टि देकर विचार करें।

साधुतासे पहिलेके ५ गुणस्थान—जब जीवकी उल्टी श्रद्धा होती है तब उसका पहिला गुणस्थान माना जाता है, यह मिथ्यात्व गुणस्थान है और जब उसकी श्रद्धा सही हो जाती है, मैं ज्ञानमात्र आत्मा हूँ इस प्रकारकी उसकी प्रतीति हो जाती है तब उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। ऐसा सम्यग्दृष्टि यदि कोई ब्रत नहीं धारण कर रहा है तो उसे चतुर्थ गुणस्थान वाला माना जाता है। पहिले गुणस्थानमें मिथ्यादृष्टि और चतुर्थ गुणस्थानमें अविरत सम्यग्दृष्टि। कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने सम्यक्त्वसे चिन्हकर सीधे मिश्र अवस्थामें आ जाय कि जहाँ सम्यक्त्व और मिथ्यात्व मिले जुले परिणाम हैं। जैसे खाकर और दही मिलाकर खाये तो कोई तीसरा ही स्वाद रहता है, न खालिश दहीका ही स्वाद मिलता है और न खालिश खाकरका ही। ऐसे ही यह सम्यक्त्वमें परिणाम यह ऐसी तीसरी अवस्था है कि जहाँ न केवल सम्यक्त्वकी अनुभूति है और न केवल मिथ्यात्वकी। उनमें कोई सम्यग्दृष्टि गिरकर मिथ्यात्वमें आकर भी इस तीसरे गुणस्थानमें आता है। कोई सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वसे चिन्हकर अनन्तानुबन्धी कलायमें आ गया, पर अभी मिथ्यात्व नहीं जगा तो दूसरा

गुणस्थान आ जाता है। यहीं मुख्यतया प्रथम गुणस्थान और चतुर्थ गुणस्थानका स्थल्प जानलो। सम्यग्दृष्टि पुरुष यदि विषयोंसे एकदेश विरक्त है तो उसे समझना चाहिए कि यह पवमगुणस्थान न जाता है।

साधुजीवनके गुणस्थान—यह सम्यग्दृष्टि पुरुष अत्यन्त विरक्त होकर शरीर कीभी अपेक्षा तजकर सब विषयोंका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करके निग्रन्थ होकर आत्मसाधनामें लगता है तो वह साधु कहलाता है। सो साधुजन अपने जीवनमें बहुत काल तक छठे गुणस्थानमें रहा करते हैं। छठे गुणस्थानका नाम है प्रमत्त विरत अर्थात् साधु है, विषयोंसे विरक्त है मगर उपदेश देनेमें, शिला-देखा देनेमें, आहार करनेमें इन कामोंमें लग जाते हैं तो वे प्रमत्त विरत साधु कहलाते हैं। प्रमाद आगया, आत्माके निविकल्प ध्यानमें नहीं ठहरे हैं लेकिन वे प्रमत्त विरत गुणस्थानमें देर तक नहीं ठहर सकते, फिर सावधान हो जाते हैं, फिर उनके अप्रमत्त अवस्था होती है। फिर प्रमादका परित्याग करके उचे गुणस्थानमें आते हैं, वहीं अधिक देर नहीं ठहरते, फिर प्रमत्त अवस्थामें आते हैं। जैसे भुलाने वाला पालना एक ही तरफ तो नहीं रहता, वह तो आगे और पीछे दोनों ओरको चलता रहता है। इसी प्रकार साधुका जीवन प्रमत्त अवस्थामें अप्रमत्त अवस्थामें यों एक घंटेमें सैकड़ों बार बदल-बदलकर प्रमत्तविरत—अप्रमत्तविरतमें चलता रहता है। यों उनका जीवन चला, यहाँ तक श्रेणी नहीं कही जाती। जैसे कहते कि श्रेणी मोड़कर यह साधु बहुत ऊंचे परिणामोंमें पहुँच गया। अभी श्रेणीकी बात नहीं आयी।

श्रेणीके गुणस्थान—सातवें गुणस्थानमें रहकर यदि साधुका बहुत ऊंचा परिणाम हो जाय तो वह बहुत ऊंचे गुणस्थानमें चढ़ता है, सो इसके ऊपर दो प्रकार की श्रेणी है—एक उपशम और एक क्षपक। जो कर्म साधुके लगे हैं उन कर्मोंका उनमें धातिया कर्मोंका विशेषतया उपशम करके जो ऊर चढ़ते हैं वे उपशम श्रेणीमें जाते हैं और जो उन कर्मोंका क्षय करते हुए श्रेणी चढ़ते हैं वे क्षपक हैं। वे ८वें, ९वें, १०वें, १२वें गुणस्थानमें चढ़ते हैं। जो क्षपक श्रेणीमें चढ़ते हैं उन्हें ८वें, ९वें, १०वें, ११वें गुणस्थानमें चढ़ते हैं। जो क्षपक श्रेणीमें चढ़ते हैं उनका नियमसे मोक्ष हो जाता है और जो उपशम श्रेणीमें चढ़ते हैं उन्हें ८वें, ९वें, १०वें, ११वें गुणस्थान तक चढ़कर फिर वहाँसे नियमसे नीचे आना पड़ता है क्योंकि कर्माणोंका उपशम किया था, पर कर्माणे तो दबी हुई पड़ी थीं। जब तक उनके दबनेका समय रहता है तब तक तो परिणाम निमंल रहे और जब वे कर्माणे उखड़ गईं तो परिणाम उनके ढीले हो गए तो वे १०वें, ६वें, ८वें, ७वें, छठवें गुणस्थान तो नियमसे आते हैं। यदि उस ही बीच मरण हो गया तो वह तुरन्त चारेमें भी आ जाता है, देवगतिमें उत्पन्न होता है।

भोजन करनेके कारण प्रमत्त हो जानेसे प्रभुके श्रेणीसे पतन और प्रभुत्वके विनाशका प्रसङ्ग—साधुजन जो प्रमाद अवस्थामें आ गए वे श्रेणीमें नहीं

देखो ! पहिले प्रभु श्रेणीमें बढ़कर १३वें गुणस्थानमें पहुँचे । अरहंत भगवान् -योग केवली हुए । श्रेणीमें ८-९-१०-११ में बढ़कर वहा शेष धातियाकमोक्ष विनाश करके १३वें गुणस्थानमें पहुँचते हैं । तो तुम्हारा प्रभु पहिले तो १३वें गुणस्थानमें पहुँचा और अब भोजन करनेकी खटपट लगा देनेसे प्रमाद उनमें आ गया, सो श्रेणीसे गिर गए । अब छठे गुणस्थानमें आ गए । किर केवली क्या रहे ?

मूलतः निर्दोष प्रभुके कबलाहारकी असंगतता -१२वें गुणस्थानमें तो कीरणशीह कहलाता है । वर्हा राग रंच मात्र भी नहीं रहता । क्षरक श्रेणीमें १०वें गुणस्थान के बाद १२वें में पहुँचते हैं और १३वें में अरहंत होते हैं । अब जितनी भी आयु शेष रही उतनी काल तक सयोग केवली अवस्थामें रहता फिर १४वाँ गुणस्थान योग केवलीका होगा । यर्हा आत्मप्रदेशपरिस्पन्द च भो नहीं रहता । कोई पुरुष पदार्थकलामें बैठ जाए । कुछ भी हिले डुले नहीं तो भी योग चलता रहता है । आत्म-प्रदेश यहीं भीतर हिलते डुलते चक्कर लगाते रहते हैं उसे कहते हैं योग । तो उन प्रभुके पहिले योग था, १४वें गुणस्थानमें योग नहीं रहना । विहार उपदेश आदि सब कुछ बाद करके परम विश्राममें रह जाते हैं, यह है स्थूलतया योग निरोध । इसके बाद होता है १४वाँ गुणस्थान, यहाँ योगका अभाव है । इसमें कितनी देरको रहते हैं पांच-छः स्वस्वरोंके बोलनेके बराबर काल है । वे १४वें गुणस्थानसे मुक्त हो जाते हैं । अधारिया कमोसे रहित सिद्धप्रभ बन जाते हैं । तो ऐसे वीतराग अनन्त ज्ञान, अनन्त दशांन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति इनसे सहित ये सकल परमात्मा सिद्ध बन जाते हैं । तो ऐसे वीतराग अरहंत प्रभु जो कि बड़े बड़े योगीन्द्रोंसे आराध्य हैं उनमें जूँदा आदिका मानवा व उसका प्रतिकार माना ॥ यह किसी भी प्रकार संगत नहीं बैठता ।

शङ्कुकारके प्रभुके भोजनके प्रयोजनमें चार विकल्प—ज्ञानस्वरूप आत्मामें उपयोगको स्थिर करके सामुजनोंने अन्तरज्ञमें स्वच्छ ज्ञानप्रकाश प्रकट किया और ज्ञानमात्र में हूँ इस प्रकारकी तीव्र भावनासे अभेद भावनासे उन्होंने बाहरी समस्त विकल्पोंका विनाश किया था । ऐसे परम ध्यानके प्राप्तसे निर्वन्य सामुजनोंको कैवल्य प्राप्त हुआ । अब वहाँ अनन्तज्ञान, अनन्तदशांन, अनन्तशक्ति और अनन्तआनन्दका प्रतिपथ अनुभवन चलता है । ऐसे प्रभुमें अब किसी प्रकारकी वाधा नहीं रहती । प्रभु हो गए, परमात्मा हैं, योगीन्द्रोंके आदर्श हैं, व्येय हैं । उस परम विकालमें कोई शङ्कुकार ऐसी कल्पनाएं कर डालता है कि वे प्रभु जब वर्षों, संकड़ों वर्षों नक जीवित रहते हैं तो भोजन करते हैं । उनसे पूछा जा रहा है कि प्रभु भोजन किसनिए करते हैं । कुछ तो प्रयोजन होगा । बिना प्रयोजनके सावारण आदमी प्रवृत्ति नहीं करता । शोहीजन यदि संसारकी विडम्बना नहीं मानते, मगर किसी प्रयोजनसे ही तो उन प्रवृत्तियोंमें रहते हैं । ज्ञानीरको माना कि वह मैं हूँ, इसकी तरक्की करना है । दुनिया

को बताना है कि यह मैं कुछ हूँ । कुछ उद्देश्य तो बनाया । कोई केवल विषयोंके पोषणके लिए, मौजसे रहनेके लिए भोजन करके संतुष्ट रहने वाले लोग हैं उनका प्रयोजन यही है कि यह शरीर मैं हूँ और मैं खुश हो रहा हूँ इसमें मेरी उन्नति है । यों कुछ तो प्रयोजन रखते हैं, चाहे वह प्रयोजन पिथा आशयमें हो चाहे सम्यक आशयमें । जितने भी लोग प्रवृत्ति करते हैं उनका फिर कुछ न कुछ खाल अवश्य है । ज्ञानी साधुजन भी भोजन करते हैं तो उनका प्रयोजन यही है कि इस समय मेरी आत्मामें वह योग्यता नहीं है वह पूर्ण विकास नहीं है कि जिसमें यह आत्मा उत्कृष्ट हो, उन्नत कहलाये, फिर संकटमें न आये । मेरी संकटहीन अवस्था नहीं है । आत्मामें संकट आये हुए हैं । ऐसी दशामें यदि आहार त्याग करके यही प्राणविसर्जन करते तो संसारसे छुटकारा तो नहीं हो सकता । फिर किसी भवयमें जन्म घरणा करना होगा उससे हमारा लाभ नहीं है । किसी तरह इस शरीरकी रक्षा कुछ समय बनाये रहें जब तब कि मैं आत्मा अपने आत्मापर पूर्ण विजय प्राप्त नहीं करता उन विकल्पोंको तजक्कर निविकल्प समाधिमें नहीं आ पाता तब तक तो शरीर रखना ही होगा, उसके लिए भोजन करते हैं । शरीर रख रहे निविकल्प समाधि प्राप्त करनेका प्रयत्न रखनेके लिए । प्रयोजन तो कुछ है । प्रभुका क्या प्रयोजन है, क्यों वे भोजन करते हैं । इस सम्बन्धमें चार विकल्प रहे । क्या शरीरकी दृष्टिके लिए पुष्टिके लिए प्रभु भोजन करते हैं अथवा ज्ञानध्यायन संयमसिद्धिके लिए प्रभु भोजन करते हैं ? अथवा क्षुधाकी वेदनाका प्रतिकार करनेके लिए प्रभु भोजन करते हैं या प्राणोंकी रक्षा करनेके लिए भोजन करते हैं ? जितने लोग भोजन करने वाले हैं सबके इन चारोंमेंसे कोई न कोई उद्देश्य है । तो इन चार विकल्पोंमेंसे कौनसा विकल्प स्वीकार करते हो ?

शरीरपुष्टिके लिए प्रभुके भोजन माननेकी असंगतता—प्रभु शरीरकी पुष्टिके लिए भोजन करते हैं यह बात तो असिद्ध है । जब भगवानके ज्ञानवरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय ये चारचातिशा कर्म नष्ट हो जये तो अन्तरायमें लाभांतरायकमें भी है, उसका भी विनाश हो गया । तो कर्मके विनाश होनेसे प्रतिसमय विशिष्ट परमाणुओंका लाभ होता ही रहता है । पवित्र शरीरवर्गणोंके परमाणु आते ही रहते हैं और उन धर्गणाओंके लाभसे शरीरको पुष्टि सिद्ध है । कितने ही लोग तो अधिक खानेसे ही दुबले रहा करते हैं । तो खानेके साथ इस शरीरकी पुष्टिका अविनाशाव नहीं किन्तु शरीरवर्गणाओंका शरीरमें आनेके साथ शरीरकी पुष्टिका सम्बन्ध माना जा सकता है । जो लोग आहार करते वहां भी क्या उनके शरीरवर्गणाओंका आवागमन नहीं है । तो प्रभुके नाभान्तरायका क्षय होनेसे कोई विशिष्ट वर्गणाओंको शरीरमें प्रवेश होता है उससे उनका शरीर पुष्ट है । दूसरी बात यह है कि शरीरकी पुष्टिके लिए प्रभु भोजन यहां करें तो फिर उन्हें निष्परिग्रह निरीह किसे कहा जा सकता है ? जैसे यहांके इन्हाँमें मोहीजन अपने शरीरकी पुष्टिके

लिए ही भोजन करते हैं तो वे निपर्यन्थ तो नहीं कहलाते। यह तो बड़ी विडम्बना है कि शरीरकी ध्यान रखकर अपने आत्मामें कुछ विकल्प मचाये, कुछ कल्पनालूप प्रदृश्टि करे।

शरीररागकी असारता—मैया ! शरीर किसका है ? शरीरकी पुष्टि कर लेनेसे आत्माको क्या पुष्टि मिलती है ? आत्माकी पुष्टि तो शान्तिलाभसे है ! जितना यह शान्ति स्थितिमें रहेगा उतना ही समझिये आत्मा पुष्ट है। शरीरके पुष्ट होनेसे आत्माकी पुष्टि नहीं है। और फिर जीव देहके बन्धनमें उड़ा है, क्लेशोंका तांता, दूसरोंका राग लग रहा है, शरीरको हिफाजत भी रखनी पड़ती है, सभी विडम्बना है। वस्तुनः पूछो तो शरीर हो तो हमारे सब दुःखोंकी जड़ है। यह दृष्टि जो खिची खिची फिर रही है बाह्य पदार्थोंमें, किसी ममत्व में लग रहे हैं, किसी ममत्वमें लग रहे हैं, आशक्त हो रहे हैं, कल्पनायें उठा करती हैं। यदि यह शरीर न होता, केवल यह मैं आत्मा ही आत्मा होता तो कैसी पवित्र स्थितिमें होता, फिर ये मोहके रागके बन्धन कहीं ठहरते। लोग चाहते हैं कि रागसे उत्पन्न हुए क्लेशको हम राग करके दूर करेंगे। मगर जैसे कपड़ेमें लगे हुए खूनके दागको खूनसे ही धोनेपर वह धाक नहीं होता है इसी तरह रागसे मोहस ही तो दुःख उत्पन्न होता है और रागसे ही हम उम दुःखको मिटाना चाहें, तो यह मिटानेकी पुस्ति नहीं है। करते क्या हैं लोग सिवाय इसके। राग हो परिवारपर, मित्रपर, इज्जतपर, शरीरपर तो क्या होता है ? रागने देदना उत्पन्न होती है, भीतरमें आकृतता होती है, अशान्ति होती है, उस अशान्तिको न सह सकनेसे काम क्रया किया। बस प्रेम करने लगे, रागमधी बातें बोलने लगे, राग बढ़ाने लगे। यह जाननेकी, समझनेकी कोशिश करते हैं कि हमारा तुम्हरपर अधिक राग है, तुम्हारा भी हमरपर पूर्ण राग है या नहीं, ऐसी बुद्धि द्वारा, प्रवृत्ति द्वारा जाननेकी कोशिश करते हैं और ये मोहों जीव कुछ समझ जाय कि हाँ जितना हम चाहते हैं उतना ही ये चाहते हैं तो ये अग्रनेमें कुछ मोज सा मानने लगते हैं। पर वहाँ क्या मिला ? सिवाय एक अशान्तिके और बन्धन बढ़ानेके, अशान्ति बढ़ानेके। अभी तक कम रागमेंथे, दूर थे, खबर न थी, परिचय न था, बोल चाल व्यवहार न था। जहाँ रागकी बात चली, बन्धन चला, व्यवहार बना अब उतना बन्धन बन गया कि प्रशान्ति ढढ गई। तो रागसे उत्पन्न हुई देदनाको जाँत करनेका उपाय राग करना कभी नहीं हो सकता।

राग आगकी जलन बुझनेका उपाय ज्ञानवर्षण—राग आगमें जल रहे प्राणियोंको इस जलनसे बचा सकनेमें समर्थ है। वर्षा यों कह रहे कि यह ज्ञान चुक्कि अपनों भूमिसे दूर पहुंच गया, अब दूरसे अपनी भूमिकी तरफ ज्ञानको लाना है तो जैसे समुद्रका ही जल जब सूर्यके आतिष्ठके कारण संमुद्रसे उठकर दूर चला जाता है और उसका रूप बदलकर बादल बन जाता है, अब वह ही जल या समुद्रका ही जल, पर

जब इतने ऊंचे से बादलोंसे बरषकर समुद्रमें आता है तो इसे बरषना कहते हैं। यों ही समझिये कि हमारे इस ज्ञान समुद्रसे यह ज्ञान जल रागकी गर्भीसे ज्ञानमय भाप सा बनकर आने कल्पनाओंका रूप रखकर कल्पनाओंके रूपसे चलकर बहुत दूर चला गया है। यह ज्ञानजल जो मेरा ही अग है वह अनन्त रूप बिगाड़कर कल्पनाओंका बादल बनकर दूर चला गया है, अब यह मेरे निकट आता है तो इस आनेको हम बरषना कह सकते हैं क्योंकि जैसे बादल जब बरषते हैं और समुद्रमें मिलते हैं तो वह बादल आने बादलपने का रूप छोड़कर पानी जैसी भाप बनकर ही तो समुद्रमें मिल सकता है। इसी प्रकार हमारा यह ज्ञानतल जो कि व्यक्तिरूप बिगाड़कर कल्पनाओंका रूप रखकर सुभवे दूर निकल गया, वह ज्ञान मेरे पास आया तो उन कल्पनाओंका रूप तोड़कर, खत्म करके एक विशुद्ध ज्ञानमात्र अनन्त स्वरूप जैसा रूप रखकर यह मेरे पास आता है तब तो मेरेसे मिल सकता है अर्थात् कल्पनाके रूपमें यह ज्ञान उड़ा उड़ा फिर रहा है। तो रागकी वेदनाये उत्तम हुई क्लेशकी जलनको बुझानेमें समर्थ एक ज्ञानवधी ही है। अन्य कोई उपाय नहीं है। रह रहकर इस रूप घटेमें दो एक बार कभी तो अपने आपको इस मूलकी पुष्टि तो करना चाहिए। मैं आत्मा ज्ञानरूप हूँ। उस ज्ञान द्वारा मैं अपने ज्ञानस्वरूपकी ओर आऊ तो इस आत्मामें एक बल बढ़ता है।

ज्ञानके सम्पर्कमें सर्व ओरसे ससृद्धिलाभ — भैया ! चाहिये क्या सिवाय आनन्दके और क्या वाच्चा है ? सभी लाग यही चाहते हैं कि मेरेको उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त हो। आनन्दके सिवाय और कुछ वाच्चा तो नहीं। तो उसका यह उपाय है कि मैं अपने आत्माके ज्ञानस्वरूपको समझ और कुछ समय तो इसके निकट रह लूँ। ऐसा जो उपाय है वह इतना अच्छा उपाय है कि जिसमें समस्त समृद्धियां भरी हुई हैं। ऐसा ज्ञान करने वाले आत्माके विवेकपूरण शुभरागसे पुण्य इतना बढ़ता है कि अन्य भावोंसे पुण्य उतना नहीं बढ़ सकता। ज्ञानी पुरुष की भक्तिदान आदिक प्रब्रह्मिये पुण्यरस द्वाना बढ़ता है कि अज्ञानी पुरुष कभी भी नहीं बढ़ा सकते हैं। चक्रवर्तीना जैसे वैभवका प्राप्त करनेका पुण्य प्राप्त करना इन अज्ञानी मोहीं पुरुषोंका काम नहीं है। जो ज्ञानी पुरुष हैं, जिन्हें संयम तपश्चरणसे प्रेम रहा है ऐसे पुरुषोंन ही ऐसा पुण्यरस द्वारा प्राप्त कि चक्रवर्ती हुए। वही चक्रवर्ती यद्गर अपने ज्ञानको बिगाड़ ले, मिथ्यात्व दृश्यमें आ जाय ये भले ही फिर निष्ठदृश्यमें आ जाय पर उत्कृष्ट पुण्यरस जो भी प्राप्त होता है वह मोहके कारण नहीं प्राप्त होता। उसका पूर्वभवका एक श्रेष्ठ ग्रादर्श जीवन था। तीर्थद्वार प्रकृतिका जो बन्ध होता है उसके करमें समर्थ क्या ये मोहींजन हैं ? अरे ज्ञानी पुरुष ही अपने आपमें अपने ज्ञानस्वरूपका आदर रखकर जो एक आनन्दिक सुख प्राप्त कर रहा है उससे यहां भी तुरन्त आनन्द मिल रहा है और परलोकमें भी उसकी बुद्धि निर्मल रहेगी। वहां भी धर्मसाधना करके वह अपनेको संसारके समस्त संकटोंसे दूर कर लेता है।

सर्वविशुद्ध प्रभुके भोजन और शरीरोपचयका प्रयोगन दोनोंकी असंभवता — अपने आपकी बात समझनमें, अपने निकट रहनेमें इस ज्ञानस्वरूपका अनुभव करनेमें आनन्द ही आनन्द है। जैसे कहते हैं कि मिश्री सब तरफसे भीठी होती है, इसी तरह इस आत्माका स्मरण करना, इसकी चर्चा करना, इसके निकट बसना, इन कार्योंमें भी स्वाद सर्वतः मधुर ही मधुर है। बाकी जो आकुलता, चिता, तुष्णा, शोभ आदिक मचे हुए हैं वे सब तो एक कछटमयी चीजे हैं। आत्माका स्पृश्य करना यह एक मञ्जूलरूप, आनन्दरूप कार्य है, यह वैभव इस जीवने अब तक न प्राप्त किया। बस यही इस जीवपर गरीबी लगी हुई है। अन्य बाहरी बातें तो वे सब भिन्न ही हैं। उनसे अपना क्या बड़ान मानना? अधिक बन आ गया तो क्या, लोक में अपना खला चल गया तो क्या, सामूज्य हो गया तो क्या, ये तो सब भोहजालसे सम्बन्धित बातें हैं। इनसे आत्माकी अमीरी नहीं, किंतु अपने आपका सहज ज्ञान-स्वरूप क्या है इसका अनुभव आये तो एक ऐसी अमीरी है कि जिसके प्रतापसे संसारके समस्त संकट सदाके लिए टल सकते हैं। आत्माका विशुद्ध वैभव पूरणरूपसे जिसने प्राप्त कर लिया है ऐसे सकल परमात्मा प्रभु अरहंत देवके सञ्चनवर्में यह कहना कि शरीरकी पुष्टिके लिए वे भोजन करते हैं, तो यह बात युक्त नहीं है। यदि भोही जीवोंको तरहसे वे प्रभु भी शरीरकी पुष्टिके लिए भोजन करने लगें तो फिर उनमें प्रभुता क्या रही। वे तो साधारण पुरुषोंकी तरह दीन हो गए।

ज्ञानध्यानसंयमसिद्धिके लिये प्रभुभोजन माननेकी मूढ़ता—प्रभुके तो शब्द केवलज्ञान हो गया जिसके द्वारा समस्त पदार्थके स्वरूपका प्रतिसमय स्पष्ट साक्षा त्कार करते हैं। यदि प्राप्त न होता ज्ञान तो कहा जा सकता कि ज्ञानलाभके लिये वे कुछ काम करते हैं। जहाँ परिणीत ज्ञान लाभ है जिसके आगे और कुछ चाहिये ही नहीं, ऐसा असीम अनन्त ज्ञान जिनके प्रकट हुआ है उनके विषयमें कहना कि वे ज्ञान सिद्धिके लिए भोजन करते हैं तो यह अपवादको बात है। उनके ज्ञान उत्पन्न हुआ है और विशुद्ध हो जानेके कारण यह ज्ञान अक्षयस्वरूप है, त्रिकालमें कभी नष्ट नहीं हो सकता। तब फिर ज्ञान शुद्धिके लिये भोजन प्रवृत्ति कहना तो प्रभुके लिये शयुक्त है। ध्यानकी बात कहो तो प्रभुमें तो ध्यान-परमार्थमें है ही नहीं, क्योंकि ध्यान कहते हैं वित्तके निरोध को। एक तत्त्वमें किसी राधार्थमें किसी विषयमें उपयोगको स्थिर करें, ध्यान करें। ध्यान वहाँ सम्भव ही नहीं। करणानुयोगमें जो ध्यान बताये गये हैं—सुकमिया प्रतिपादी और व्यपरत क्रियानिवृत्ति, सो उपचारसे कहे गए हैं अर्थात् ध्यानका काम है कर्मक्षय वैसे ही उनके हो रहा है तो उन परमात्माके कर्मक्षय निरखकर एक ध्यानका उपचार कर दिया गया है। तो ध्यान प्रभुमें वस्तुतः होता ही नहीं है। ध्यान तो परम पहिले ही हो नका। उस ध्यानके प्रतापसे ही वे परमात्मा हुए। अब परमात्मामें यदि कुछ ध्यान

करना बाकी रहा तो समझो कि वे अधूरे हैं। तो प्रभुर्पे ध्यानकी बात कहना भी युक्त नहीं। संयमकी सिद्धिके लिए भी आहारकी बात जेना युक्त नहीं क्योंकि संयम है यथाख्यात। वह सो सदा रहता है। यथाख्यातका धर्थ है जैसा आत्माका स्वरूप है वैसा उकट हो गया है, जहाँ किसी भी प्रकारका विकार नहीं है, आत्माका जो विशुद्ध स्वरूप है वह प्रकट हो गया है। वह यथाख्यात संयम प्रभुके सदा ही रहता है। प्रबृहत्सके अगे किस संयमकी सिद्धि करता ? इससे यह बात कहना भी ठीक नहीं है कि प्रभु ज्ञानध्यानसंयमकी सिद्धिके लिए आहार करते हैं।

क्षुधावेदनाप्रतीकारके लिये प्रभुभोजन माननेकी अज्ञानता—तीसरा विकल्प भी ठीक नहीं कि प्रभु भूखकी वेदनाका प्रतिकार करनेके लिए भोजन करते हैं अनन्त मुख अनन्त शक्ति सम्बन्ध भगवानको क्षुधाकी वेदना सम्बन्ध ही नहीं है। अपने स्वभावको लेकर योड़ा प्रभुके स्वरूपका निरंय तो बनावें। प्रभु क्या है ? एक आनंदिष्ट जाननामात्र आत्मा तो अमूर्त है ही, उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं हैं पर यह संसार अवस्थामें आत्माका जो यह अमूर्त रूप मूर्त सारीमें जकड़ा है, एक दूसरेसे व्यवहार करता है, चाहे किसी हरमें सही, ऐसा जो मृत्तिक ढङ्ग बन गया है यह स्वर्य के स्वरूपकी सम्मालन करनेके कारण बन गया है। यही तो विडम्बन है जिसको देखकर भोही लोग खुश होते हैं। यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह तो सारी विडम्बना है। इसे दृहृत आत्माकी जो एक विशुद्ध अवस्था है वह अपने अमूर्त ज्ञानस्वरूपमें रहने की अवस्था है, बात तां प्रात्मके बह है आत्माकी। जहाँ ज्ञान प्रकाशमात्र रह गया, परिपूर्ण रह गया, ऐसा ज्ञानपूङ्ज जो कि अनन्त आनन्दका अविनाशात्री है ऐसे अनन्त शक्तिसम्बन्ध प्रभुमें किसी प्रकारकी वेदना बताना यह तो अत्यन्त अमृत बात है। इससिये यह तीसरा विकल्प भी ठीक नहीं कि प्रभु क्षुधावेदनाके लिए भोजन करते हैं।

प्राणरक्षार्थ प्रभुभोजन माननेकी अमृतता—अब चौथा विकल्प क्या : सम्बन्ध ही सकता है ? क्या प्रभु प्राणोंकी रक्षाके लिए भोजन करता है ? क्या यह बात जब सकती है ? अरे ! प्रभु तो चरमशरीरी है। चरमशरीरी जितने भी है वे सब अपमृत्युसे रहित होते हैं और केवलज्ञान होनेपर क्या यह सम्बन्ध है कि उनकी आयु बीचमें कभी भी खत्म हो सकती है ? वे प्रभु अपमृत्युसे रहित हैं, वे अब सब उकार अवर हो गए हैं। अमर उसे कहते हैं जिसका मरण न हो। मरण तो किसी भी आत्माका नहीं है पर इस संसार अवस्थामें यह जीव अपने मरणकी कल्पना करता है पर आत्माका विनाश नहीं होता। प्राणरक्षार्थ प्रभुका भोजन बतानेकी बात तो यहाँ दीनताकी है। दूसरी बात इस जीवके साथ आयुकर्मका सम्बन्ध लगा है। जब समस्त धातियाकर्मोंको दूर करके वे प्रभु अनन्त अनुष्टुप्य सम्पन्न होते हैं तो फिर अपमृत्युकी बात उनमें सम्बन्ध नहीं रहती। ऐसे भीप्रभुमीर्या देव आदि अनेक जीव हैं जिनके अपमृत्यु नहीं होती। प्रभु तो अनन्त अनुष्टुप्य सम्पन्न है, इनकी जीवमें मृत्यु

परीक्षामुखसुत्रप्रबचन

हो जाय यह बात सम्भव नहीं। सो यह भी कहना ठीक नहीं कि प्राणोंकी रक्षाके लिए प्रभु भोजन किया करते हैं।

अनन्त गुणवीर्यसम्पन्न प्रभुमें कबलाहारकी ग्रसंभवता - किसी प्रकार प्रभुमें कोई श्रवणगुण लाना यह उनमें सम्भव नहीं है। प्रभु तो सर्वतः समस्त गुण सम्पन्न हैं, उनमें एक भी श्रवणगुण नहीं है। भक्ताम्बर स्तोत्रमें कहते हैं कि “को विस्मयोद्धर यदि नामगृणैरशेषस्त्वं संश्रितो निरवकाशतया तुनोश । दोषेष्वपात्तविविधाश्रयजातगर्वः स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽस्ति ॥” हे प्रभो ! आपका आश्रव समस्त गुणोंने ले दिया है। समस्त गुण आपकी शरणमें आगये हैं। आप समस्त गुणोंसे भरपूर हो गए हैं। इसमें कोई आश्र्यकी बात नहीं है। क्यों आश्र्य नहीं ? हे प्रभो, इन गुणोंने बहुत कोशिश की कि हम कहीं रहें आयें। इन गुणोंने बहुत निवेदन किया इन संसारी जीवोंसे कि हमें ठहरनेके लिए स्थान नहीं दिया। अरे भगो, भगो ! ऐसा कहकर सभी संसारी जीवोंने उन समस्त गुणोंको भगा दिया। तो वे बैचारे सारेके सारे गुण भक्तमारकर आपमें आ गये तो इसमें कौनसा आश्र्य है ? इसका प्रश्नाण ? देखिये ! जब दोषोंने इन संसारी जीवोंके पास जाकर निवेदन किया कि हमें ठहरने के लिए स्थान दो, तो सभी संसारी जीवोंने आदरसे बुलाया और कहा—आओ, आओ ! तुम्हारे ठहरनेके लिए यहां खुब जगह है। तो सारेके सारे दोष इन संसारी जीवोंके पास आ गये। इसमें आश्र्यकी कोई बात नहीं। प्रभुके इन गुणोंका वरणन करनेमें मूलमें यह भी बात हो सकती है कि यह जाताना कि प्रभु संसारमें उच्च गुणवान् तो आप ही हैं संसारी जीव तो दोषोंसे भरे हुए हैं, गुण तो समस्त आपके पास आ चुके हैं। तो ऐसे उच्छृङ्खला गुण सम्पन्न प्रभुमें किसी भी प्रकारकी वेदनाकी बात जोड़ना यह सज्जत बात नहीं है। प्रभु १८ दोषोंसे रहत है—धूषा, तृषा, ठण्ड, गर्मी, जन्म, जरा, मरण, विषाद, शोक आदिक जितने भी दोष हैं वे एक भी दोष अब प्रभुमें नहीं रहे। ऐसे निर्दोष प्रभुके ज्ञानस्वरूपपर दृष्टि देकर यदि हम भक्ति स्तुति ध्यान आदिक करें तो खुदमें भी एक अशाव बढ़ता है जिससे कि स्वर्यकी उन्नति है। प्रभुका स्वरूप विगड़ कर फिर प्रभुकी भक्ति करनेमें कोई सिद्धि नहीं है।

वेदनीय सद्गुवमात्रसे प्रभुमें परीषहका उपचार कथन—शङ्काकार कहता है कि यदि सकल परमात्मा प्रभु भोजन नहीं करते हैं तो फिर आगममें यह क्यों कहा कि—‘एकादशजिनेपरीषहः’। जिनेन्द्र भगवानमें ११ परीषह होते हैं फिर तो इस आगमसे विरोध खा जायगा। समावानमें कहते हैं कि ‘एकादशजिने’ इम् युत्र का विरोध नहीं है। कारण यह है कि उन परीषहोंका जिनेन्द्र भगवानमें उपचारसे

प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः प्रभुमें परीषह नहीं है, किन्तु वेदनीय कथका अभी सद्ग्राव है। इस कारण उपचारसे परीषह बताया गया है। उपचारका कारण वेदनीय का सद्ग्रावमात्र है अन्य और कुछ नहीं। परमार्थहिट्से निरवा जाय तो प्रभुमें परीषहोंका सद्ग्राव होनेपर भी क्षुधा आदिक परीषहोंके सद्ग्रावसे यदि भूख मान ली जाय तो रोग बंध, तुष्णास्वर्ण परिग्रह भी हो जाने चाहिए, तब तो प्रभुके महान् दुःख हो गया जैसे वेदनीयके रहने मात्रसे प्रभुमें भूख मान बैठते हो ऐसे ही फिर रोग मान बैठोंकि रोग भी असाता वेदनीयसे होता है फिर तो प्रभुको बुखार भी आने लगे डाक्टरकी भी जरूरत पड़े, उन प्रभुको पलङ्घपर भी लिटाना पड़े। ये सब ऐब आ जायेंगे। निर तो उहैं कोई पीट भा दे, उनका बध भी कर दे तब तो फिर वे प्रभु महान् दुःखी हो गए और जब वे प्रभु इतने अधिक दुखी हो गए तो फिर उनमें प्रभुता ही क्या रही? जैसे श्वाके संसारी लोग भूख प्यास, रोग, शोक, छेदन, भेदन आदिके दुःख पाते हैं वैसे ही दुःख प्रभुके लग गए? तो फिर उनमें प्रभुता ही कहाँ रही?

रसनासे भोजन परिज्ञान करनेपर मतिज्ञानका व अन्य बाधाओंका प्रसङ्ग—अब और भी विचार करो। भोजन करनेका ढंग तो सबका एकसा ही होता है। हाथसे कीर उठाकर भूखमें डालकर ही तो सभी लोग भोजन किया करते हैं खट्टा मीठा, चरपरा आदिक स्वादोंका अनुभवन किया करते हैं, तो ऐसा ही भोजन करनेका ढंग उन प्रभुका भी होगा वे भी सब प्रकारके स्वादोंका अनुभवन किया करते होंगे। तब तो भगवानके मतिज्ञान आ गया अर्थात् इन्द्रियज्ञान बन गया। तो तुम ही बताओ कि प्रभु जो भोजनमें गुणआदिकका ज्ञान करते हैं या जो भी उनका उपयोग होता है वह क्या रसना इन्द्रियके द्वारा हो तब तो भगवानमें मतिज्ञानका प्रसङ्ग आ गया। यदि कहो कि केवल ज्ञानके द्वारा प्रभु भोजनका अनुभव करते हैं तब तो सारा भोजन जो दूसरे लोगोंने भी खाया उसका भी उहैं अनुभवन हो जाना चाहिए, क्योंकि केवलज्ञानके द्वारा प्रभु भोजनका अनुभव करते हैं और केवलज्ञानसे ही अपना खाया जाना जा रहा ऐसे ही सबका खाया भी जान रहे। यह नहीं कहा जा सकता कि भगवान अपने शरीरमें ठहरे हुए भोजनका ही अनुभव करते हैं, दूसरेके शरीरमें ठहरे हुए भोजनका अनुभव नहीं करते, क्योंकि भगवान तो निमौह है, उनमें यह मेरा शरीर है। यह दूसरेका शरीर है ऐसी बुद्धिका विभाग नहीं है। उनके लिए सब पदार्थ हैं तो वे ज्ञेयमात्र हैं, उनमें यह विभाग नहीं किया जा सकता कि यह मेरा शरीर है और यह दूसरेका शरीर है, यह मेरा खाया भोजन है ऐसा अनुभव वे प्रभु नहीं किया करते यदि ऐसा अनुभव करें तो वे राणी द्वेषी कहलावेंगे। सो यदि केवल ज्ञानसे अनुभव करते हैं तो केवलज्ञानसे तो सारा भोजन जाना जा रहा है, खुदका भी खाया और परका भी खाया। सभी भोजनोंका अनुभव होना चाहिये। इससे क्षुधापरीषह और उसका प्रतिकार मानना प्रभुमें युक्त नहीं है। तो एकादशजिने परीषह, यह सूत्र कहकर

जो भगवानमें परीषह बताये गये वे उपचारसे बताये गए हैं।

“एकादश जिने” सूत्रमें परीषहोंके अभावकी ध्वनि—एकादश जिने ऐसा सूत्र है उसका अर्थ यदि यह करते हो कि प्रभुमें ११ परीषह हैं तो उसका भाव यह लेना होगा कि वे ११ परीषह उपचारसे हैं, वास्तवमें प्रभुमें ११ परीषह नहीं हैं। और यदि उसका यह अर्थ करते हो कि एकः न दश हिति एकादश, १ भी नहीं, १० भी नहीं, अर्थात् कोई भी परीषह प्रभुमें नहीं तो इससे यह स्पष्ट होगा कि उपचारसे भी प्रभुमें परीषह नहीं माने जाते। इस सम्बन्धमें स्पष्ट प्रयोग है कि भगवान् क्षुधा आदिक परीषहोंसे रहित है क्योंकि अनन्त सुखी होनेसे। जो अनन्त आनन्दमय है वह परीषहोंसे युक्त नहीं होता। जैसे सिद्ध भगवान् अनन्त श्रन्दसे समाप्त हैं, क्या उनके क्षुधादिक परीषह हैं? तो इवेताम्बर लोग भी यों नहीं मानते कि सिद्धमें ११ परीषह हैं। जैसे सिद्ध प्रभुमें कोई परीषह नहीं इसी प्रकार सकल परमात्मा भी अनन्त आनन्दमय हैं इसलिए उनमें कोई परीषह नहीं है।

भोजन करते हुए प्रभुके अदृश्य होनेके कारणके तीन विकल्प—श्रव कुछ दो एक आखिरी बाँ भी सुनो। प्रभुके कबलाहारके शङ्खा समाचानमें बहुत सा समय गुजर गया, आखिर श्रव विराम लेना चाहिये और कुछ आगेकी प्रयोजनभूत बात सुनना चाहिए। मोक्ष क्या है? मोक्षका स्वरूप क्या है, इस प्रकरणको आगे बहुत विस्तारसे कहा जायगा। सो इस प्रकरणको श्रव समाप्त करना ही चाहिए, बहुत ही गया। प्रभुमें कबलाहार माननेकी कोई गुंजाइश ही नहीं री। आखिरी कुछ बातोंमें एक बात यह पूछनी है शङ्खाकारसे कि भगवान् भोज। करते हुए लोगों को दिखते हैं या नहीं? या लोगोंको ऐसा दिखता है कि यह देखो प्रभु बैठे हुए भोजन कर रहे हैं। इस तरहसे हाथ उठा रहे हैं, इस तरहसे कौर तोड़तोड़कर खा रहे हैं? यदि प्रभु इस तरह दिखें तो उनमें हीनता नजर आवेगी। तो इस बातको शङ्खाकार भी नहीं मानता क्योंकि इसमें तो एक बहुत बड़ा विडम्बना और तुच्छता जैसी बात लोगोंको प्रतात होने लगेगी। क्या है, जैसे यहकि मनुष्य लोग भोजन किया करते हैं तो उनमें कोई प्रभुताकी श्रद्धा तो नहीं होती? दिलवपर श्रद्धामें कपीं आ जायगी। तो यहां मानते हैं शङ्खाकार लोग कि भगवान् जो नहीं दिखा करते हैं भोजन करते समय सो क्यों नहीं दीखा करते हैं? क्या वे कोई श्रयोग्य काम कर रहे इसलिए एकान्तका आश्रय कर मानो छिपकर वे खा रहे हैं, सो लोगोंको नहीं दिखते या विद्या विशेषसे अपनेको उस समय तिरोहित कर देते इस कारण नहीं दिखते।

भोक्ता प्रभुके अदृश्य होनेके प्रथम दो कारणोंपर विचार—यदि एकांत

में आकर इस तरहसे छिप करके प्रभु भोजन करते हैं तो इसमें तो बहुत बड़ी हीनता की बात आ जायगी । जैसे कोई परस्त्रीलम्पटी पुरुष कोई अनुचित काम करता है, पाप करता है तो वह लोगोंसे छिप करके करता है क्योंकि वह आयोग्य काम है । इसी तरह एकात्मे खाने वाली भी बात हो गई । यदि प्रभु छिपकर भोजन करते हैं तो इसमें तो एक बहुत बड़े दोषकी बात है । वे भी जानते हैं कि यह खानेकी बात दोषिक है इसलिए वे छिपकर भोजन करते हैं तो सारा परिणाम ही दृष्टित हो गया, प्रभुता क्या रही वहाँ तो दीनता आ गई । यदि कहो कि जिस समय प्रभु भोजन करते हैं उस समय अधेरा छा जाता है । सो उस समय भोजन करते हुए वे दिखा नहीं करते अथवा जब या जहाँ गहन अन्धकार होता है वहाँ स्थित होकर भोजन करते यह कहना अनुकूल है, क्योंकि वहाँ अन्धेरेकी तो सम्भावना है ही नहीं । प्रभुका शरीर ही ऐसा प्रकाशमय है कि उसकी दीर्घितसे ही अन्धकार दूर हो जाता है । प्रभु जहाँ बैठे वहाँ सर्वत्र प्रकाश बना रहता है । उनका देह स्वयं प्रकाशमय है, अन्धकारकी भी सम्भावना नहीं है जिससे माना जाय कि प्रभु अन्धेरेमें खा रहे हैं इसलिए लोगोंको नहीं दिखते । तो यह विकल्प नहीं उठाया जा सकता कि भगवान् इसलिए नहीं डिखते हैं आँखोंसे कि वहाँ अंधकार छाया रहता है ।

विद्याविशेषके उपयोगसे भोक्ता प्रभुके अदृश्य होनेका विकल्प—अब शङ्खाकार कहता है कि भगवान् आँखोंसे इस कारण नहीं दिखते कि भगवानमें ऐसी विद्या विशेष है कि जिस समय वे भोजन करते हैं उस समय वे ऐसी विद्याका उपयोग करते हैं कि वे भोजन करते हुए लोगोंको न दिखे । यहाँ भी जावृगर लोग ऐसे होते हैं जो ऐसा आँखोंको बोला दे देते हैं कि कुछसे कुछ दिखने लगता है । अबर बहुत से लोग खड़े हैं घड़ी बैधि हुए और समय तो हो करीब ५ बजे दिनका, पर जावृगर कहदे कि देखो इस समय घड़ीमें ठीक १२ बज रहे हैं तो देखने वाले उन सभी लोगों को अपनी अपनी घड़ीमें १२ बजनेका ही समय दिखता है । अब तथ्य उसमें क्या है, बात क्या है इसपर हम कुछ नहीं कह रहे हैं लेकिन ये जावृगर लोग ऐसी ही अनेक बातें दिखा देते हैं कि लोगोंको कुछसे कुछ दिखने लगता है । कहो एक रूपएका दो रुपया बना दे । एक जावृगर था । तो उसने बहुतसे खेल दिखाये पर एक खेल ऐसा दिखाया कि जब वह अपना डिब्बा लेकर चला किसी मनुष्यकी टोपी उठाकर हिलाई तो उस टोपीसे कुछ कनखना करके रूपए गिर, यों ही जिसकी भी कमीज, घोती, कुर्ता आदि पकड़कर हिलाया, वहीसे खनखनकी आवाज आई, बादमें वह सभी लोगोंसे एक एक दो दो पैसा मांगने लगा । तो वहाँ था क्या ? केवल आँखोंका बोखामीत्र था । तो ये ताँत्रिक लोग भी कुछसे कुछ बात करके दिखा देते हैं । तो इसी प्रकारसे ये प्रभु भी अपनी विद्याविशेषसे ऐसा हृश्य उपस्थित कर देते हैं कि प्रभु भोजन करते जाते हैं पर लोगोंको दिखते नहीं हैं ऐसा शङ्खाकार कह रहा है ।

विद्याविशेषके उपयोगसे भोक्ता प्रभुके अदृश्य होनेके विकल्पका निराकरण —अब उक्त आशङ्काका उत्तर देते हैं कि यदि वह अपनेको ग्रोफन करने के लिए विद्याविशेषका उपयोग करते हैं तो किर उनमें निर्ग्रथता कहाँ रही ? वडे ऊंचे महर्चियोंमें अपनेक ऋद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और उन्हें पता भी नहीं रहता कि मेरेको कोई ऋद्धि उत्पन्न हुई है । जिस समय मुनि अकम्पनाचार्यके संघपर हस्तिनापुरमें विपक्ति आयी थी कि मुनिहृष्ट्यायासमें कीजिन बलि आदिक ४ मन्त्री देखानेकाला पाकर यहाँ बहाँ डोलकर जब हस्तिनापुरके राजा पद्मके यहाँ मन्त्री बन कर उन्हें लगे थे उस समय एक सिहल नामक विश्वद राजाको छन कपटसे बलिने अरने वशमें कर लिया, उस समय राजाने उस बलि मन्त्री ग्र प्रसन्न होकर यह वचन दिया था कि तुम्हें जो मांगना हो मांगलो । उस समय बलिने यह कह दिया था कि हमारे वचनको भण्डारमें रख लो समय पाकर मांग लेंगे । जब अकम्पनाचार्य आदिक ५०० मुनियोंका संघ हस्तिनापुर आया उस समय बलिने अपनी कषायको पूरा करने का भीका समझा । बलिने ७ दिनका राज्य उम राजासे मांगा । अब तो वे बलि आदिक चारों मंत्री पूर्णं स्वतन्त्र हो गए । मुनिसंघको चारों औरसे कांटोंसे बेड़ दिया, उसके भीतर और भी कूड़ा करकट आदिक गंदी चीजें भरदीं और उममें आग लगा दी । उस समय उन मुनियोंके कण्ठ इदू हो गए थे पर वे सब संसार, शरीर, भोगोंको अनित्य जीवनकर जीवनकी इच्छा न रक्षकर ध्यानस्थ होगए । उस समय श्वरण नक्षत्र कांप रहा था । सावन मुद्दी पूर्णिमाका बृत्तान्त है, चतुर्थकालकी यह घटना है उस कृष्णपत श्वरण नक्षत्रको देखकर अन्य देशकी पहाड़ीपर स्थित एक मुनिराजने रात्रिके समय 'हाय' शब्द बोला । साधुजन रात्रिको मौन रहते हैं, मगर यह एक भयानक उपद्रवका समय था तो हाय शब्द बोल आया, यद्यपि साधुजन जरा भी अपने नियम संयमसे किसी भी परिस्थितिसे थोड़ा भी डिगते हैं तो उसका भी वे प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होते हैं, तो भी परिस्थितियाँ ऐमी आती हैं कि जहाँ वर्षका अधिक सम्बन्ध है, तीव्ररक्षाका तो बोल आना ऐसा हो जाता है, तो उस समय उनके निकट पुष्पदन्त क्षुलक थे उन्होंने पूछा महाराज ! क्या विपत्ति है ? तो बताया कि एक संघपर ऐसी आपत्ति आ रही है और उसके निवारणका एक उपाय भी है । तो पुष्पदन्त महाराज बोले —वह कौनसा उपाय है ? मुनिने कहा कि विष्णुकुमार मुनियोंके विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हुई है, वे यदि चाहें तो उस उपद्रवको समाप्त कर सकते हैं और जिस तरह कर सकते हैं वे अपने बुद्धिबलसे विचार लेंगे । तब यह पुष्पदन्त क्षुलक इनको विद्याविशेष सिद्ध थी, सो शीघ्र ही विष्णुकुमार मुनिराजके पास उन्हें और विनती की कि महाराज ! अकम्पनाचार्य आदिक ५०० मुनियोंके संघपर ऐसी विपत्ति आई है और उसका उद्धार कर सकनेमें आप ही समर्थ हैं । उपद्रवको बात सुनकर विष्णुकुमार बोले कि वह कौनसा उपाय है ? तो पुष्पदन्त महाराजने कहा कि आप को विक्रिया ऋद्धि सिद्ध है । अब आप स्वयं विचार कर सकते कि कौनसा उपाय है

जिससे वे समस्त मुनि संकटसे बच सकते हैं । बलिने ७ दिनका राज्य मांगकर आहुएरोंको दान देनेका बढ़ाना रखकर लोगोंपर छाप डाल दिया और उस मुनिसंघ पर इतना कड़ा उपद्रव किया । तो विष्णुकुमार मुनिने पूछा कि हमको विकिया कृदि भी सिद्ध है क्या ? बात यहां यही बतानी थी कि बड़े बड़े योगीश्वरोंको बड़ी बड़ी कृदियां भी उत्पन्न हो जाती हैं पर उन्हें उनका पता नहीं रहता । आखिर विष्णु कुमारने परीक्षा करनेके लिये अपना हाथ बढ़ाना शुरू किया तो हाथ बढ़ता ही गया, अब क्या था, अनि छोटा बामन शरीर धारणकर विष्णुकुमार मुनि बलिके पास पहुँचे और बोले—हमें भी कुछ दान दो ! बलिने कहा—जो वाहो सो माँगलो । तो विष्णुकुमारने कहा कि हमें तो ३ पग भूमि चाहिये और कुछ भी न चाहिये... नहीं, नहीं और कुछ मांगो, तीन पग भूमि से क्या होगा ? तुम बैठे ही नाटे कदके हो ! तो विष्णुकुमारने कहा—नहीं, हमें और कुछ न चाहिये ! तो बलि बोला—अच्छा, तीन पग भूमि नापलो । विष्णुकुमार मुनिने विकियाकृदिसे अग्ने शरीरको इतना बड़ा बना लिया कि दो पगमें ही सारे मनुष्य लोकको नार लिया, तो सारे पगके लिए उन्हें जगह ही न मिली । यह दृश्य देखकर बड़ा हाहाकार मच गया । बलिसे विष्णुकुमारने तीसरा पग घरनेके लिये जगह मांगी तो वह बलि क्षमा मांगता हुआ कहता है—महाराज ! तीसरा पग घरनेके लिये हमारी धीठ है । क्षमा करो ! आखिर जैसा विष्णुकुमारने कहा वैसा बलिको करना पड़ा । इस तरहसे उन ७०० मुनियोंका उपर्युक्त दूर हुआ । तो मूल बात यह बतानी थी कि बहुतसे योगीश्वरोंको बड़ा अतिशय कृदिका प्राप्त हो जाता है फिर भी वे उसका ध्यान भी नहीं करते, अरने विद्याविशेषका उपयोग नहीं करते । फिर जो परमात्मा हो गए उनमें विद्या विशेषका उपयोग करनेकी बात धोपना यह तो असञ्जूत बात है । यदि वे प्रभु ऐसा करने लगें तो फिर उनमें निर्गन्धता कहां रही ? प्रभुपते की बात तो दूर जाने दो ।

सकल परमात्माको अदृश्य होनेकी अनावश्यकता अच्छा, अब एक बात और बतलावो कि वे प्रभु तो अदृश्य हैं किसीको दिखाते नहीं हैं तो ऐसे प्रभुको आहारदाता आहार कैसे दे पाता होगा ? जब कोई दिखाता ही नहीं तो वह आहार किसे दे ? तो यह बात कहना युक्त नहीं है कि भोजन करते हुएमें भगवान् दूसरेकी आंखोंसे नहीं दिखते हैं । यदि कहो कि प्रभुका ऐसा अतिशय विशेष है, उसमें विकल्प क्या उठाते हो, क्यों नहीं दिखते, क्यों नहीं दिखते, औरे प्रभुके एसा अतिशय है कि वे भोजन करने जाते हैं फिर भी दिखाई नहीं देते । तो ऐसा ही अतिशय यहीं तुम क्यों नहीं विद्युद मानलो कि प्रभुमें भोजनका आभाव है । वे कलाहार नहीं करते । अन्य अन्य अधिकार्य लेकर प्रभुमें कवताहार मिद्द करना और उनकी प्रभुताकी लाज रखने की कोशिश भी करना यह बात सिद्ध नहीं हो सकती है । प्रभु हैं परमात्मा । तीनों लोकके जीवों अधिपतिके हैं । वे क्षुधा तुष्णा आदिक समस्त दोषोंसे रहित हैं, ऐसा परमात्माका स्वरूप है और यहीं परमात्म स्वरूप हम सब उपासकोंके लिए ध्येय है ।

परमपवित्र आदर्श ध्येय सकल परमात्माके कबलाहारकी असंभवता — देखो हम आप लोगोंके मन तो है ही और यह कहीं न कहीं लगता है, इस मनके लगानेका ही नाम भक्ति है। भजन करना और सेवन करना एकार्थक है। पर भजन करना यह शब्द सभीको अच्छा लगता है, सेवन करना यह शब्द किसीको नहीं अच्छा लगता, पर हैं दोनों एकार्थक शब्द। भगवानके ज्ञानानन्दादिक गुणोंके समान ही जो अपना स्वरूप है उस स्वरूपको उपयोगमें लेना उस स्वरूपका इस्तेमाल करना, उसे व्यवहारमें लेना, तन्मात्र अपना आचरण करनेका प्रयास करना यही तो भगवानका सेवन है। तो उस प्रभुका ध्यान करके भक्तजन करते क्या हैं? उनका उद्देश्य क्या है? उनका उद्देश्य मात्र एक ज्ञानानन्दका है। जीवनमें अनेक काम किए हैं। जीवन भर सांसारिक खूब विषय कषाय भोगे, अनेक प्रकारके सांसारिक मौज माने, सभी प्रकारके प्रयोग कर लिए, इसलिए कि हमें सुख मिलेगा, मगर उन सब प्रयोगों से इस जीवको अभी तक सुख न मिला क्योंकि सुख मिला होता तो फिर दुःखी होने की जरूरत क्या थी? इस दुःखकी ही परम्परामें पड़ा हुआ यह जीव जन्ममरणके घोर दुःखमयी चक्रकर लगता हुआ अपनेको सदा बरबाद ही करता रहा। इस जीवने अभी तक लाभकी कुछ भी बात न पाई। हम अभी अपनी अपली दुनियामें नहीं आये हैं, बाहरी बाहरी दुनियामें ही हमने अपना उपयोग लगाया है। हम इस उपयोगसे हटकर अपने निजी स्वरूपकी अपनी दुनियामें आयें तो ऐसा पवित्र आनन्द प्रकट होगा कि जो मैल जो सकट इस जीवके साथ लगे हुए हैं वे समाप्त हो जायेंगे। ऐसा ही उपाय करके जिन्होंने धातिया क्रमोंका विनाश किया और अनन्त चतुर्भूत्यस्वरूप पाया जिनका ज्ञान अनन्त है, जो कुछ भी सत् है, थे, और होगे, वे सब उनके ज्ञानमें आये हैं। या यों कहो कि जो उनके ज्ञानमें नहीं है वह सत् है ही नहीं। जो है वह सब ज्ञानमें आया। इतना जिनका विशाल ज्ञान और ऐसे विशाल ज्ञानका अवलोकन करने का दर्शन और सदा निराकुल रहे, भविष्यमें कभी भी उस स्वरूप विकाससे रंचमात्र की हानि नहीं हो सकती है, ऐसा जिनके अनन्त सामर्थ्य है, अनन्त आनन्द है, अनन्त चतुर्भूत्य सम्प्रभाता है ऐसे प्रभु तो कबलाहार रहित ही रहना चाहिए।

निरावरण विशद ज्ञानके सकल प्रत्यक्षत्वकी सिद्धि — यह प्रसङ्ग इस बात पर चला था, प्रकरण मूलमें यह था कि कोई प्रत्यक्ष ज्ञान होता है निरावरण। इसपर एकने शंका की कि निरावरण ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होता। अनादिमुक्त ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष है। एकने कहा कि निरावरण ज्ञान तो होता है मगर प्रकृति ही सावरण थी, वही निरावरण हो गई, वही सर्वज्ञ भगवान है। इसके बाद ईवेतर्त्तिर सिद्धांतवादों कहते हैं कि तुम्हारी सब बातें ठीक हैं मगर प्रभुकी स्थिति भोजन किये बिना नहीं रह सकती। सो इन्हें भोजनकी सुविधा आई और प्रभुमें भोजनकी सिद्धि करनी चाही, मगर कबलाहार प्रभुमें सम्भव हो ही नहीं सकता। वह प्रभु अन्तरङ्ग बहिरङ्ग समस्त दोषोंसे रहित है। ऐसे समस्त दोषोंसे रहिल जो सकल परमात्मा है वह प्रत्यक्ष ज्ञानी

है। उ। पर धांतेया कर्नोंका आवरण नहीं रहा। उनका ध्यान करनेसे हमें अपनी शान्तिका मार्ग मिलता है। और जब तक राग है, संसार है तब तक ऐसा पुण्यवर्द्धन मिलता है कि इनको यहां भी समृद्धिर्याप्राप्त होती है और अन्तमें सबका परित्याग करके निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए हमें इन प्रभुकी भक्ति करना योग्य है।

जीवका अनादिमुक्त स्थान—इस जीवका आदिस्थान निगोद है। इस जीवके चिरकाल बसे रहनेके बार बताये जा रहे हैं। जीव चिरकाल तक जिस घरमें रह सकता है, रहता है और रहेगा वे दो हैं—एक तो निगोद और दूसरा मोक्ष। तो यह जीव अनादिसे निगोदमें बसता चला आया था। जहां बहुत छोटा शरीर, एक शरीरके अनन्त जीव थनी, एक श्वास ले तो सबका श्वास हो, और लब्धपर्याप्तक होने से श्वासकी बात ही नहीं है। एक श्वासमें १८ बार जन्म भरण हो, अर्थात् एक सेकेण्डमें करीब २३ बार जन्मते और मरते हैं। जहां जन्म लेना, मरण करना, आयु का क्षय होना, नई आयुका भोगना फिर उसका क्षय होना यही निरन्तर जिनका काम है। केवल स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा बहुत तुच्छ जिनका ज्ञान है, जो सदा आकुलताश्रोंमें ही निरन्तर पड़े रहा करते हैं जिनकी आकुलताश्रोंका व्यक्त रूप भी हम आप जैसा नहीं बन पाता और जैसे अन्तर ध्वनकी आग है, ऊर पता नहीं पर भीतर जल भून रहे हैं यों ही वे निगोदिया जीव आकुलित रहते हैं।

एकेन्द्रियके भवोंमें भी तुच्छता—उस निगोदभवसे निकलनेका क्या उपाय रखे ? जब सुभवितव्यतासे स्वयं ही पारणामोंमें यथानुष्ठ पंदता आती है। किसी प्रकारका कोई शुभ भावसा बना, कुछ बना तो यहां वहांसे निकलते हैं पर निकलकर यदि दृश्यी बने, आग, हवा, पेड़ इनमें ही रमा, इनमें ही जन्म लिया तो निगोदसे कुछ तो अच्छा हो गया। लेकिन एकेन्द्रियके जालसे छुटकोरा तो नहीं मिला, इसमें भी कितना दुख है। पृथ्वीको खोदलो, काटलो तो क्या पृथ्वीके जीव बाहित नहीं होंगे ? पानीको गर्म किया जाता, आगको बुझा दिया जाता, हवाको रवड़में रोक लिया जाता, पेड़ोंको छिन कर भिन्न कर दिया जाता तो क्या यह उनपर क्लेश नहीं ? ये तो परावातजन्य बातें हैं पर स्वयं अपने आपमें जां निरन्तर आकुलता बनी रहनी है वह तो है ही।

इन्द्रियादि असङ्गी भवोंमें भी हितदर्शनकी असंभवता—एकेन्द्रियसे निकले तो दो इन्द्रिय जीव हुये। इतना विकास हुआ कि अब रसना इन्द्रियसे भी यह जीव ज्ञान करने लगे। जैसे लट, केचुवा, जोंक इनमें जरा ज्ञान और बढ़ गया। अब उसमें रसना इन्द्रियके द्वारा कैसा ज्ञान बढ़ा सी हम सब उसमें समझ बनायें तो वह तुच्छ लगता है। वहांसे तीन इन्द्रिय जीव हुए, ती इस जीवमें सिफं इतना ही और विकास हुआ थि ध्रुण इन्द्रियके द्वारा भी ज्ञान करने लगे, जैसे चौटी कीड़ी आदि।

ये गंधका भी ज्ञान करते हैं और जो हृषु गंध हैं उन्हें पहिचान जाते हैं। इससे कुछ और विकास हुआ तं चार इन्द्रिय जीव हुए। ये उड़ने वाले कई पैरों वाले जो जीव नजर आते हैं वे चार इंद्रिय जीव हैं। जैसे भैंवरा, मञ्चवर, टिड़ी आदि। इनको चक्षु इंद्रिय प्राप्त हो जाती है तो इनमें रूपका ज्ञान करनेकी भी थोड़ी सामर्थ्य आ जाती है। इससे और विकास हुआ तो पञ्चेन्द्रिय जीव हुये। अब कार्त्तीके द्वारा भी कुछ ज्ञान करनेका विकास हो गया लेकिन मन न मिलनेसे वहाँ भी अहितसे बचने व हितके प्रार्थ में लगनेका पुरुषार्थ नहीं चल सकता।

संज्ञी पञ्चेन्द्रिय होनेपर भी हितका अप्रयास और संसारभ्रमणकी असमाप्ति—पञ्चेन्द्रिय भी हो जायें और मन मिले, हितना होनेपर भी यदि पशु रहे, सिंहादिक और जानवर रहे तो पापकर्मोंको करके ही अपना अनर्थ कर लेते हैं। नारकी बने तो वहाँ भी कलेश भोगते हैं। मनुष्य बने तो यहाँ भी यदि विषय कषायोंमें ही रमकर जीवन खो दिया तो उससे लाभ क्या पाया? मनुष्य हानेमें और पशु पक्षी होनेमें फिर तो कोई अन्तरकी बात न रही। कदाचित मरकर देव हुए तो वहाँ भी विषयोंमें रमकर दूसरोंके सुख साधन देखकर, दूसरोंके वैभवको निरखकर अन्दर जल भुक्तर जीवन खो दिया, तो उसमें भीकोई लाभकी बात न मिली। ऐसी यह संसारकी भटकना चल रही है।

संसार परिभ्रमणका कारण—संसारकी भटकनाका कारण है मिथ्या श्रद्धान् मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण। जो चौंजे अपनी नहीं उन्हें मान लिया कि ये मेरी हैं, घर, घन, सम्पदा, परिवार, ठाटबाट, इज्जत, सम्मान आदिक ये सब इससे भिन्न चौंजे हैं, पर इन्हें मान लेते हैं कि सब मेरी चौंजे हैं, यही तो मिथ्याश्रद्धान है। जैसे सबका संकोच करके थोड़े शब्दोंमें कहा जाय तो यही कि पर्याय बुद्धिमता है जो पर्याय मिली उसीको मान लिया कि यह ही मैं हूँ। यह मिथ्या श्रद्धान लदा हुआ है और इसी मिथ्या श्रद्धानके विस्तारमें यों अनेक अनुभव चल रहे हैं। शरीर उत्पन्न हुआ तो इसने समझ लिया कि मैं उत्पन्न हो गया। शरीरका वियोग हो गया तो इसने समझ लिया कि मैं मर गया। जो काम अच्छे हैं ज्ञान और वैराग्यके हैं उनकी ओर तो रुचि नहीं जगती, उन्हें तो दुःखका कारण माना। अरे कहाँ फस गए, आज तो पंडितोंके चक्कर में पढ़ गए। अब यहाँ इस ज्ञानसभासे हस ज्ञानचर्यकि बीचमेंसे कैसे भागा? जाय? कुछ कष्ट सा अनुभव करते। प्रथम तो इस श्रोत आते ही नहीं हैं। सम्बेदकी बातें भी नहीं रुचती। भला जिस आत्माका निराहार स्वभाव है, निःशरीर रहनेमें ही जिस आत्मोकी भलाई है, यह कल्याणकी अन्तिम अवस्था है। उसे भूलकर उत्साह-हीन, कायर हो रहे हैं। अगर बात आये कि रातको न लाको तो बड़ा बोझ सा लगता, बुरा सा लगता। भला इन २४ घंटोंमें मनुष्यताके नाते दिनमें ही एक दो

बार खा निया तो इससे स्वास्थ्य बिगड़ता है ? बीमार होनेपर डाक्टर लोग खाना खानेके लिए बताते हैं कि छोड़नेके लिए ? खाना छोड़नेके लिए बताते हैं । तो यह तो केवल स्वच्छताकी भवनकी प्रवृत्ति है जो कि जरा भी संयमको वित्त नहीं चाहता, और रागभाव स्नेहभाव जो अहितरूप हैं उनकी बात आये तो भवन प्रफुल्लित हो जाता है । अभी कोई सिनेमाका प्रोग्राम बन जाय तो देखो कि तना हृषित होकर कितने उमड़से उस प्रोग्राममें आते हैं । तो जीवोंको विषयोंका संस्कार बनानेसे ज्ञान और वैराग्यकी बात तो रुचती नहीं और रागकी बात रुचती है, भवनकी बात रुचती है उसकी कभी बाट नहीं जीहते । जो आत्माकी अन्तिम पावन कल्याण को अवस्था है । मैं कब ऐसा समय पाऊँ, समस्त समाजोंने रहित होकर केवल आत्मा ही आत्मा रह जाऊँ, ऐसी बात भवनमें कहाँ आती ? स्वप्नसम मायावी दुनियामें इस कलित्त पर्यायकी यशकी ठान रखी है दुनियामें मेरा नाम हो, विषयोंके भरपूर साधन मिलें । विषयोंमेंसे हचनेकी जिन्हें शरणी प्रवृत्ति की है उन्हें इन विषयोंको ही पान करना रुच रहा है । कुछ तात्कालिक भवुर होनेके कारण उन्हें मोक्षको प्रतीक्षा करनेकी बात कैसे आ सकती है । यों मिथ्या ही श्रद्धा है और ऐसा ही अपना उपयोग भवनये रहते हैं और विषय-कथाओंका ही आचरण कर रहे हैं इससे संसारमें इतना परिभ्रमण कर रहे हैं ।

संसारसङ्कटोंसे मुक्त होनेके मार्गका दर्शन कदाचित् किसी जीवको कुछ ज्ञानावरणके ज्ञानोपशमसे मंदकषायके अवसरसे कुछ लाभ उठानेकी बात आये और कुछ आत्महितकी रुचि जगे तो वह वस्तुस्वरूपके यथार्थ जाननेका अभ्यास रखता है और ऐसा ही अपने ज्ञानको बनाता है, परसे उपेक्षा करके एक इस निज केवल ज्ञान आनन्दस्वरूप अपने आपमें ठहरनेकी सोचता है, उद्यम करता है और इस यत्नपैरे जब कभी ज्ञानके द्वारा इस ज्ञानस्वरूपकी अनुभूति हुई तब यह जानता है—अहो मेरा सर्वस्व तो यह है और ये सारे समागम समर्कं तो अहितरूप ही हैं । ऐसे अन्तः यत्न-शील आत्माको सम्यक्त्व उत्पन्न होता है । सम्यक्त्वके समान इस जीवको कुछ भी हितकर नहीं है । जीवको सम्यक्त्व हो ग्रथीत इस शरीर तकसे भी निराला केवलज्ञान ज्योतिमात्र आनन्द भरपूर अपने आपके सर्वस्व स्वरूपरूप इस अंतस्तत्त्वका भान हो तो इस जीवको संसारसे छूटनेका मार्ग मिलता है ।

ज्ञानी संतका संवेदगपरक तत्त्वचिन्तन—यह अन्तस्तत्त्वका रुचिया ज्ञानी संत अपनेमें तत्त्वचिन्तन करता है । जगत्के समस्त पदार्थोंका समागम अहित है, विनाशक है, ये सम्पर्क सदा नहीं रह सकते हैं पर मेरे आत्माके इस स्वरूपका सम्बन्ध तो जो स्वयं आनन्दमय है निरन्तर रहा करता है । इस जगत्में मेरे को मेरे तिवाय अन्य कुछ शरण नहीं है, बल्कि परको शरण माननेकी दृष्टि करनेसे मैं अपने स्वरूप-दृष्टिसे दूर हो गया, रीता हो गया, तो अशरण बन गया, परको शरण माननेकी बुद्धि

में यह मैं अशरण हो जाता हूँ। इस भेरेका मेरे सिवाय और कोई शरण नहीं। इस भेरेका केवल यह मैं ही ज्ञानस्वरूप शरण हूँ। वही चर्साविक आ नन्द है। संसार के इन रागादिक भावोंमें तो दुःख ही दुःख है। इन सब दुःखोंका करने वाला और दुःखोंसे छूटनेका उत्थ बन ने वाला और दुःखोंसे छूट सकने वाला यह मैं सर्वत्र अकेला ही तो रहा करता हूँ। अकेला ही संसारमें रुलता हूँ, अकेला ही संसारसे छूट कर मुक्त होकर प्रगते आपमें समृद्धिका अनुभव करता हूँ। मेरा मेरे सिवाय अन्य कुछ मेरा नहीं है। यह मैं स्वयं पवित्र हूँ। उस ज्ञानस्वरूपमें अपिवत्रताका कहाँ अवसर है। मोही पुरुष जिस शरीरमें आसक्त हो रहे हैं, दृष्टि बना रहे हैं यह शरीर भीतरसे ऊँर तक सर्वत्र गंदा है, अशुचि है, अत्यन्त अपवित्र है। मतुष्यका यह अशुचि शरीर तो इससे बैराय बनाकर विरक्त रहकर अत्मसात्त्वना करके मोक्षका उपाय धनानेके लिए मानो मिला है। देखो, तो जब इत। गंदा शरीर मिला इनपर तो पोही इतराते हैं, यदि यह कुछ देवोंके शरीरकी भाँति भला सा मित जाता, गदगो न होती तब तो न जाने ये जीव कितना इस शरीरमें रम जाते। तो यह शरीर मिला है विरक्त रहनेके लिए किन्तु मोही जीव विष्टाके कीड़ाकी भाँति इसी अपवित्र शरीर में रमते हैं। इनसे इस आत्माका कुछ भी हित नहीं है। अरने आपके पवित्र ज्ञाननन्दस्वरूपको निहारनेमें ही कल्याण है। इस ही वृत्तिसे कर्म रुकेगे। कर्मोंका बन्ध कटेगा और यह लोकभ्रमण मिटेगा। ऐसा महा दुर्लभ यह रत्नत्रय इस जीवको जब प्राप्त होता है, जब यह जीव वर्षमें आता है तब समस्त संपाद शरीर भोगोंसे परिग्रहों से आरम्भोंमें विरक्त होकर निर्गन्ध होकर केवल आत्माकी साधनामें रहा करता है।

साधु सतों द्वारा ज्ञानधन अन्तस्तत्त्वकी साधना—तत्त्वज्ञ साधुजन अरने आत्मसिद्धिकी धूनमें कहाँ रहते हैं? गुफामें बनमें। ककरीजी जीवीनमें पड़े रहते हैं। बाह्य दुःखोंकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं है। शरीरके आशमकी तरफ उनका कोई रुग्नाल नहीं है। केवल एक इस जीव नको रखनेके लिए जिसमें कि संगमकी साधना करना है। जब कभी क्षुश्राको बेदना होती है तो जीरीकी, प्राणकी रक्षाके लिए योग्य विधिसे आहारचर्यावे भोजन ले आते हैं। मैंने तुम्हें लिलाया, अब तुझके काम मूँगा, बस ज्ञानमें, ध्यानमें, स्वध्यायमें, इनमें अपने आपके चिक्कोंलगाना है। और, विषय कषायोंसे विरक्त बढ़ानेके अर्थ अनेक प्रकारके तपश्चरणोंमें लगाना, इस प्रकार अनेक यत्नोंसे साधुजन एक इस आत्माको ही साधना करते हैं, जो आत्मा ज्ञानमय है। जिस ज्ञानकी यहाँ चर्चा चल रही है।

ज्ञानी निर्गन्ध संतोंकी विशुद्धिवृद्धि—ज्ञान कहो, प्रमाण कहो। प्रमाण का स्वरूप बताया जा रहा है, प्रमाणके भेद बताये जा रहे हैं और इस प्रमाणमें प्रत्यक्ष प्रमाणकी चर्चा चल रही है। जिस ज्ञानमें ये सब विकास है इन सब विकासोंमें स्रोतभूत जो अरने आपमें सहज ज्ञानस्वभाव है उसकी उपाधनामें साधुजन रहा

करते हैं। तो जब इस ज्ञानवभावकी आराधनामें रह रहकर साधुजन इसपर अपना अधिकार पा लेते हैं और ऐसा अधिकार पा लेते हैं कि जैसे गृहस्थको धनीजनोंको अपने खाने पीने आदिकका साधन सुलभ है। जब चाहा तब खाया, जब चाहा तब लेटा, जब प्यास लगी तब भी भट टोटी खोला और उस कल्पवृक्षसे पानी भरने लगा, जैसे चाहे सुखके साधन पड़े हैं, भन आया तो भोग लिया। देखो, इसमें अब भी पराधीनता है, विलम्ब लगता है, लेकिन साधु पुरुष जो कि आत्मसाधनमें अभ्यस्त हैं उन्हें विलम्ब नहीं लगता। जब हृष्टि दी, जब ही भीतरमें निहारा तभी वह परमात्मत्व समझ है।

साधु संतोंकी अप्रमत्तता और वीतरागताप्राप्ति—कारणपरमात्मत्वकी आगधनाके अभ्यस्त साधुजन अब प्रमाद अवस्थाको छोड़कर अप्रमत्त होते हैं, निविकल्प समाधिमें आते हैं। अब बुद्धिपूर्वक रागादिकका अंश भी नहीं रहता है। साधु अवस्थामें भी समाजके शिक्षणमें, सम्बोधनमें कुछ विकल्प भी उठते हैं, राग भी सताते हैं पर बीच-बीच उनसे छूटकर वे अप्रमत्त ज्ञानस्वरूपका ध्यान भी करते हैं, लेकिन अब इस ज्ञानस्वभावके निरन्तर आराधनके बलमें ऐसा विकास हुआ है कि अब वे निविकल्प समाधिमें आ गये। राग भी अब नहीं सता रहा और अबुद्धिपूर्वक जो रागद्वेषकर्म बंध गये वे बी सब निर्जराको प्र पत हो रहे हैं। होते-होते इस निविकल्प समाधिके बलसे ही एक अवस्था ऐसी आती है कि जहां समस्त मोहनीयकर्म दूर हो जाते हैं, वीतराग हो जाते हैं, रागद्वेष रेंच नहीं रहते, इतने पर भी जब तक (अन्तर्मुर्हर्तमात्र) केवलज्ञान नहीं होता, उसे कहते हैं १२ गुणस्थान, क्षीणमोह। १०वें गुणस्थानके अन्तमें रचमात्र भी जो लोभ था उस सबका भी क्षय हो गया, और अब अपक श्रेणीमें १०वें गुणस्थानसे ११वें में आये वीतराग हो गए, पवित्र हो गए। अब यह इस वीतरागतामें छोटे ही अन्तर्मुर्हर्तमें रहकर केवलज्ञान उत्पन्न कर लेता है।

वीतराग आत्माके अनन्त चतुष्टयका लाभ—जब केवलज्ञान हुआ, कैसे हुआ? बाहरी बात तो यों ही है कि समस्त ज्ञानावरणका क्षय होनेसे हुआ, ज्ञानवरणके क्षयका निमित्त पाकर यह केवलज्ञान प्रकट हुआ। तो यह केवलज्ञान निरावरण है। इसमें कोई आवरण नहीं है, विशद है। जगतमें जो भी सत् है वे सब एक साथ ज्ञात हो रहे, ऐसा सम्पूर्णरूपसे विशद निरावरण ज्ञान सकल प्रत्यक्ष कहलाता है। ऐसा केवलज्ञान जहां प्रकट हुआ है, उसके ही साथ साथ केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति प्रकट हुई है, उसे कहते हैं अनन्त चतुष्टय। चतुष्टय मायने चौकड़ी कोई चौकड़ी खराब होती है कोई भली। जब चार बच्चे जुड़ते हैं तो लोग कहते हैं कि इस चौकड़ीमें पड़कर यह बच्चा खराब हो गया और जब चार समझदार आदमी जुड़ते हैं तो लोग कहते हैं कि इस चौकड़ीने भला निर्णय विचारा। तो यहां नारक,

तियंज्व, मनुष्य, देव आदि चार गतियोंकी चौकड़ी है जिनमें संसार परिभ्रमण चल रहा है, और यहाँके अनन्त चतुर्षयकी चौकड़ी देखिये। प्रभुके प्रभ्रमुना प्राप्त हुई है, इन्हें अनन्त चतुर्षयका लाभ हो गया है, अब इससे आगे और क्या चाहिये। उन प्रभुका शरीर श्रमी और छूटना शेष रह गया है। शरीर छूटनेवर वे सिद्ध होंगे। वहाँ भी वे प्रभु अनन्त चतुर्षय सम्पन्न हैं। यही तो मोक्ष कहलाता है। यब इसके अगे क्या आवश्यकता रही?

सांसारिक कल्पित वैभवोंके लाभमें आत्माका अलाभ... भैया! सोचिए कौन सा काम इस जीवकं करना अब शेष रहा? यहाँ तो संसार अवस्थामें किसी भी भवमें हों एक न एक आगे काम पड़ा हुम्हा है। वे काम पूरे होते ही नहीं। अब सभी लोग अरनी अरनी स्थिति देख लो। गृहस्थीके काम ये कभी पूरे ही नहीं हो पा रहे। सूख धन जोड़ लिया, मानो हतना धन जोड़ लिया कि केवल व्याज व्याजसे ही सारा खर्च चल रहा है अब कुछ बिना न रहना चाहिए फिर भी उस धनके रक्षण सम्बन्धी, उस धनकी सम्भाल सम्बन्धी विकल्पोंमें व सुख माननेके समय ऊर्ध्वमें विकल्पोंमें इतना अधिक बढ़ गये कि उन्हें अब प्रभुप्रभुरण्णके लिए भी एक मिनटकी कुरसत नहीं। जब गरीबीकी हालतमें थे, कुछ दुःखमय जीवन बीतता था उस समय तो कभी कभी प्रभुका स्मरण भी हो जाता था पर अब घनिक बन जानेपर प्रभु भक्ति के लिए अवकाश ही नहीं रहा। पहिले तो बिनयुण भी था, दूसरोंका मम्मान भी करते थे, कुछ धर्मकी बात भी याद आती थी पर अब घनिक बन जानेपर तो ये सभी बातें गायब हो गयी हैं। एक बहुत बड़ा विकल्पोंकी दुनियामें पहुँच गए हैं। विपत्ति ही तो विपदा है विरक्ति और किसका नाम है?

विकल्प विपदायें और उनके अभावका अमोघ यत्न— भैया! प्रथेक घटनामें आप निर्णय कर लो कोई मकान गिर गया, बिजली तड़क गई, भूकम्प आ गया, हवेलियाँ गिर गयीं, वहाँ भी यह जीव बड़ा दुःख मचाता है पर जरा सोचो तो सही कि उससे इस आत्मामें कौनसी दुःखकी बात आ गई? केवल वहाँ विकल्प मचा कर ही तो दुःख बना लिए गए हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस आत्माके अन्दर वह भूकम्प पहुँच मया हो। यों ही किसी इष्टका वियोग हो गया तो उस इष्टके वियोग से इस आत्मामें कोई दुःखकी चौज नहीं आई, फिर भी यह जीव विकल्प मचाकर दुःखी हो जाता है। अरे इस इष्टसे न पहिले ही इस जीवका कुछ सम्बन्ध था और न वियोग होते समय कुछ सम्बन्ध है फिर भी यह जीव उस इष्टके प्रति विकल्प मचाता है और अपनेको हैरान कर डालता है। यह जीव संयोगके कालमें भी विकल्पोंसे ही हैरान हो हा था, और वियोगके कालमें भी इन विकल्पोंसे हैरान होता है। एक विकल्पोंका रङ्ग बदला, पर इस आत्माका अनर्थ कुत्त नहीं हुआ। अनर्थ पहिले भी था अब भी है। कुछ ऐसा नहीं कि पहिले अनर्थोंसे बचे हुए ये और अब अनर्थ आ

गये । तब फिर इस दुःखको मेटनेके लिए ऐसा ही तो यत्न करना होगा कि जिस यत्नके द्वारा हम विकल्पसे ये विकल्प मिटें । बस एक ही निर्णय है । उसी यत्नसे हम सुखी हो सकते हैं । जिस यत्नके द्वारा हम विकल्पसे दूर हों वह कौनसा हो सकता है ? घन वैभव बढ़ा लेना, यह तो शान्तिका यत्न नहीं हो सकता । सिर्फ़ एक सम्बन्धज्ञानका ही यत्न है ऐसा कि जिसके बलसे विकल्प दूर हो सकते हैं । जहाँ वस्तुका स्वातंत्र्य अनुभवमें आया, प्रतीतिमें आया वहाँ सब विकल्प दूर होते हैं ।

अनन्त चतुष्टयस्वरूपलाभरूप मोक्षके लक्षणमें विशेषवादकी एक आशंका—इस सहज ज्ञानके उपयोगकी स्थिरताके इलासे निर्दिकला समाधिको उत्पन्न करके साधुजनोंने अनन्त चतुष्टयका लाभ लिया है और फिर शरीररहित होकर वे आत्मसिद्ध हो गए तो वहाँ भी अनन्त चतुष्टयके स्वरूपका लाभ है । इस होका नाम मोक्ष है । इस प्रकरणमें एक शङ्खाकार यहाँ कहेगा कि मोक्षका स्वरूप बनाना कि अनन्त चतुष्टय स्वरूपका लाभ ज्ञाना सो यह अयुक्त बात है । यह शङ्खाकार विशेष-विशेषवादी है जिसका यह हठ है कि किसी भी वस्तुमें कुछ भी विलक्षणता समझमें आये तो, भट उसे न्यारा मत्त्व बना दो कि यह न्यारी चीज़ है । और इसी हठके अनुसार जब इसने अपनी बुद्धिके द्वारा निरखा कि इतने विकल्प किए जा रहे हैं तो यही तो ज्ञान है जब यह ज्ञान मिटे तब मोक्ष होगा । ज्ञान आलग चीज़ है, आत्मा आलग चीज़ है । इस ज्ञानका लक्षण केवल जानना है और आत्माका लक्षण चित्तस्वरूप मात्र है । लक्षणका भेद है, ज्ञान जुदा है, आत्मा जुदा है । तब फिर जब ज्ञान मिटता है तब मोक्ष होता है कि जब ज्ञान मिलता है तब मोक्ष होता है ? यह समस्या उस विशेषवादीके सामने थी । तो उसने यही निर्णय किय कि जब ज्ञान मिटता है तब मोक्ष होता है ऐसी आशका रखने वाला विशेषवादी यह शङ्खा करेगा कि अनन्त चतुष्टयके स्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है यह बात अयुक्त है, किन्तु ज्ञानादिक गुण जो आत्मामें वर कर रहे हैं हैं इनका विनाश हो जाय इसका नाम मोक्ष है । अब शङ्खाकार इस हीकी पुष्टिमें अरने प्रमाण देगा । कुछ समय तक ज़ंका चलेगी । इसके बाद उसका उत्तर होगा ।

